(कालिदास की समस्त रचनाओं का गद्यात्मक संक्षेप)

भाग—१

(नाटक भाग)

रचयिता

डा० कैलाशनाथ भटनागर

एम. ए., पी-एच. डी.,

भूतपूर्व प्रोफेसर, सनातन धर्म कालेज,

लाहौर

प्रकाशक

भारतीय गौरव ग्रंथमाला,

७२, हज़रत गंज, लखनऊ

दूसरा संस्करण] संवत् २००७ [मूल्य १।)

प्रकाशक
भारतीय गौरव ग्रंथमाला
७२, हज़रत गंज, लखनऊ

मुद्रक
राष्ट्रीय मुद्रणालय,
शाहनजफ रोड, हज़रतगंज,
लखनऊ

विषय-सूची
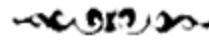
भूमिका

कालिदास की प्रसिद्धि—

कवि-सम्राट् कालिदास भारत के राष्ट्रिय कवि हुए हैं। वे भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के प्रतिरूप थे। इसलिए भारतीय विद्वानों और आलंकारिकों ने उन्हें महाकवि, कवि-शिरोमणि, कवि-कुलगुरु इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया है। ऐहोल के शिला-लेख में भी उनका यशोगान किया गया है। कवि-वर बाण ने अपने ग्रंथ हर्षचरित की भूमिका में उनकी स्तुति में लिखा है:—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥

एक और कवि ने कहा:—

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

पाश्चात्य विद्वानों ने भी मुक्त-कंठ हो कालिदास की प्रशंसा की है। जर्मन महाकवि (गेटे) ने अभिज्ञान-शाकुंतल का सर विलियम जोन्स कृत (१७८१ ईस्वी) अनुवाद ही पढ़कर यह भाव प्रकट किये थे:—

"क्या तू नव-वर्ष के पुष्प और क्षीयमाण वर्ष के फल देखने की इच्छा करता है, जिससे आत्मा, मंत्र-मुग्ध, प्रमोद-रत, आह्लादित और आनंद-मग्न हो जाती है? क्या तू स्वर्लोक तथा भूलोक के एक मधुर नाम में मिल जाना चाहेगा? अरे, (तब) मैं तेरे सामने शकुंतला का नाम लेता हूँ और बस (मैंने) सब कुछ एक-साथ ही कह डाला।"

इस प्रकार पाश्चात्य देशों में भी कालिदास के ग्रंथों का प्रचार बढ़ गया। भारतीय संस्कृति का सिक्का वहाँ भी जम गया। कविवर कालिदास की वाणी में इतना रस है, इतना ओज है कि लगभग दो हजार वर्ष

व्यतीत हो जाने पर भी उनके ग्रंथों की सुगंध वैसी ही तीव्र है, जैसी तब थी।

कालिदास का परिचय—

बड़े खेद का विषय है कि हम ऐसे महा-कवि के जीवन-चरित्र, जन्म-भूमि तथा जन्म-काल आदि के विषय में कुछ नहीं जानते। लोग अनेक अनुमान लगा चुके हैं, पर अभी निर्णयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता। कवि ने अपने ग्रंथों में अपने विषय में सर्वथा मौन धारण कर रखा है, कहीं भी अपने विषय में कोई संकेत नहीं किया। बड़ी नम्रता से अपने ग्रंथ विद्वत्समाज के सामने उपस्थित किये हैं। उन्हें गर्व तो छू तक नहीं गया। उनके टीकाकारों ने भी इन बातों पर प्रकाश नहीं डाला। कुछ कथानक अवश्य मिलते हैं, जिनमें ऐतिहासिक तथ्य का नितांत अभाव जान पड़ता है।

कालिदास का समय और जन्म भूमि आदि—

भारतीय जन-श्रुति कालिदास को विक्रमादित्य शकारि का राज-कवि बताती है। शकारि विक्रमादित्य ५७ ईस्वी पूर्व में हुआ बताया जाता है। पाश्चात्य विद्वान् और कई भारतीय विद्वानों का विचार है कि कालिदास गुप्त-काल में, अर्थात् चौथी शताब्दी में, हुए। इस प्रकार तीन-चार शताब्दियों का अंतर पड़ जाता है। कालिदास के जन्म-स्थान के विषय में भी कुछ निश्चित नहीं। कुछ विद्वान् कहते हैं कि कालिदास काश्मीर में उत्पन्न हुए; कुछ अनुमान लगाते हैं कि वे बंगाल में पैदा हुए; कुछ की धारणा है कि उनका जन्म उज्जयिनी में हुआ था। किंतु हम यहाँ कालिदास के विवादास्पद विषयों की कोई विवेचना करना नहीं चाहते। इस ग्रंथ के लिखने का अभिप्राय केवल यही है कि साधारण जनता जान सके कि कालिदास ने क्या लिखा था, जिस कारण उनकी इतनी प्रसिद्धि हुई। इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि कालिदास दो हज़ार वर्ष पहले हुए या पौने दो हजार वर्ष, वे काश्मीर में उत्पन्न हुए या बंगाल में, ब्राह्मण थे वा दूसरी जाति के। रत्न और सुवर्ण कहीं भी और कभी भी मिल जाय, वह प्रतिष्ठा पाता है।

कालिदास के ग्रंथ—

ऐसा प्रतीत होता है कि यश के इच्छुक कई दूसरे कवियों ने अपने ग्रंथ कालीदास के नाम से चला दिए हैं। विद्वान् प्रायः उनके निम्नलिखित ग्रंथ उनके द्वारा रचे मानते हैं:—

(१) मालविकाग्निमित्र, (२) विक्रमोर्वशी, (३) अभिज्ञान-शाकुंतल, (४) ऋतु-संहार, (५) मेघदूत, (६) कुमार-संभव और (७) रघुवंश।

कालिदास के ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय—

मालविकाग्निमित्र—मालविकाग्निमित्र कालिदास की प्रथम रचना है। इसमें पाँच अंक हैं। विदिशा के शुंग-वंशी महाराज अग्निमित्र तथा विदर्भ की राजकुमारी मालविका की प्रेम-लीला का वर्णन है, जिसका अंत दोनों के विवाह में होता है। इस नाटक द्वारा तत्कालीन समाज की अवस्था पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

विक्रमोर्वशी—विक्रमोर्वशी कालिदास का दूसरा नाटक है। इसमें भी पाँच अंक हैं। इसमें चंद्रवंशी राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी के परस्पर प्रेम का वर्णन है। यह कथानक बहुत प्राचीन है। पुरूरवा का प्रसंग मनु के संग ऋग्वेद १-३१-४ में आता है। पुरूरवा का अप्सरा के प्रति प्रेम-वर्णन का आभास ऋग्वेद १०-६५ में मिलता है। दोनों का प्रेम-वर्णन पुराणों में भी पाया जाता है। महाभारत में भी यह कथानक मिलता है। बृहत्कथा में यह कथानक कुछ भिन्न रूप में दिया गया है। कवि ने मूल-कथानक में कुछ परिवर्तन किये हैं, जिनसे नाटक की रोचकता बढ़ गई है।

अभिज्ञान-शाकुंतल—यह कवि का तीसरा नाटक है। इसमें सात अंक हैं। इसकी प्रसिद्धि नीचे लिखे श्लोक द्वारा प्रकट होती है:—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम्॥

इसी नाटक का सर विलियस जोंस कृत अनुवाद पढ़कर महाकवि गेटे ने इसकी प्रशंसा की थी। शकुंतला कालिदास का सर्वस्व है। धर्म और प्रेम के सम्मिश्रण से इस ग्रंथ की रचना हुई है। इस नाटक में पुरु-

वंशी राजा दुष्यंत और मेनका अप्सरा की पुत्री शकुंतला के कथानक का वर्णन है। यह कथानक महाभारत में मिलता है। किंतु नाटककार ने उसमें कुछ परिवर्तन किए हैं, जिनके कारण नाटक बड़ा रोचक बन गया है। पद्म-पुराण में यही कथा मिलती है और वह इसका अनुकरण-मात्र प्रतीत होती है।

ऋतुसंहार—ऋतुसंहार कालिदास का गीति-काव्य है। यह कवि की प्रथम काव्य-रचना प्रतीत होती है। इसमें ग्रीष्म से लेकर वसंत तक छओं ऋतुओं का वर्णन किया गया है। कवि ने इस काव्य में बड़ी कुशलता से दिखाया है कि प्रत्येक ऋतु का प्राणियों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

मेघदूत—मेघदूत कवि के प्रौढ़-काल का गीति-काव्य है। संस्कृत-साहित्य में यह सर्वथा अद्वितीय कृति है। हिप्पोलिटे फौशे का कथन है कि योरुप के सारे साहित्य में इस कोटि का गीति-ग्रंथ नहीं है। इसमें कुबेर द्वारा निर्वासित यक्ष का वर्णन है। वह वर्षा ऋतु के आरंभ होने पर मेघ द्वारा अपनी स्त्री के पास कुशल-क्षेम का संदेश भेजता है। सारा काव्य दो भागों में बाँटा गया है और लगभग १२० पद्य हैं। इस काव्य द्वारा तत्कालीन भूगोल पर काफी प्रकाश पड़ता है।

कुमारसंभव—कुमारसंभव महाकाव्य है। इसमें १७ सर्ग हैं। इनमें पहले आठ तो कवि कालिदास की रचना माने जाते हैं, शेष नौ सर्ग किसी और कवि के। इस महाकाव्य में शिवजी और पार्वतीजी के विवाह के वर्णन के उपरांत कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति दिखाई गई है। कुमार द्वारा तारक आदि दैत्यों का संहार होगा, ऐसा ब्रह्म-वाक्य था। आनंद-वर्धन (३.७) द्वारा जान पड़ता है कि समालोचकों को जगत् के माता-पिता (शिव-पार्वती) की प्रेम-लीला का वर्णन करना अच्छा नहीं लगा। संभव है इसी कारण कालिदास ने आगे नहीं लिखा। यह धारणा कि कालिदास की मृत्यु के कारण यह ग्रंथ अधूरा रह गया, असंगत प्रतीत होती है, क्योंकि रघुवंश उनकी अंतिम रचना जान पड़ती है। इस ग्रंथ पर सबसे अधिक टीकाएँ मिली हैं।

रघुवंश—रघुवंश कालिदास का दूसरा महाकाव्य है। इसमें १६ सर्ग हैं। कवि की यह अंतिम कृति प्रतीत होती है। इसमें रामचंद्रजी के पूर्वजों और उत्तराधिकारियों का वर्णन है। राजा दिलीप के वर्णन से महाकाव्य का आरंभ होता है और अग्निवर्ण तक का वर्णन किया गया है। इस पर भी बीस से अधिक टीकाएँ प्राप्त हुई हैं।

कालिदास की महत्ता—

कालिदास प्रौढ़ पंडित थे। उनकी रचनाओं का इतना सम्मान हुआ, इतना प्रचार हुआ कि यह धारणा बन गई कि कालिदास के बिना संस्कृत साहित्य का अध्ययन ही नहीं हो सकता। भारतीयों की ही नहीं, बल्कि अमेरिका-निवासी विद्वद्वर राइडर ने कालिदास की श्रेष्ठता के विषय में लिखते हुए अंत में यह लिखा है:—

"हम जानते हैं कि कालिदास महाकवि था, क्योंकि संसार उसे अकेला नहीं छोड़ सका।"

संस्कृत-साहित्य का अध्ययन कालिदास के ग्रंथों से आरंभ होता है और परिसमाप्ति भी उनके ग्रंथों द्वारा हो सकती है। उनकी रचनाओं की सरस-सरल शब्दावलि में वह भव्य-भावना ओत-प्रोत है कि बुद्धि चकित हो जाती है। मल्लिनाथ ने उनकी वाणी पर लिखा है:—

कालिदास-गिरां सारं कालिदास-सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

अर्थात् "कालिदास की वाणी के सार को तीन व्यक्ति समझ पाये हैं। एक तो विधाता ब्रह्मा, दूसरे वाग्देवी सरस्वती और तीसरे कालिदास स्वयं, न कि मुझ जैसे टीकाकार।"

इस पुस्तक द्वारा हम आपको ऐसे श्रेष्ठ कवि की रचनाओं का रसास्वादन कराते हैं।

लखनऊ
१०-६-५०

कैलाशनाथ भटनागर

मालविकाग्निमित्र

—* १ *—

विदिशा नगरी में अग्निमित्र नाम के एक राजा थे। इनकी दो रानियाँ थीं—धारिणी और इरावती। धारिणी के वसुमित्र नाम का पुत्र था और वसुलक्ष्मी नाम की कन्या थी।

महारानी धारिणी की सेवा में मालविका नाम की एक दासी थी। महारानी ने नाट्याचार्य गणदास को उसे संगीत आदि सिखाने के लिए नियत कर दिया।

महारानी की बकुलावलिका नाम की एक और दासी थी। एक दिन किसी काम से कहीं जाते हुए बकुलावलिका को मार्ग में कुमुदिका नाम की दासी मिल गई। वह महारानी की 'नाग-मुद्रा' सुनार से लेकर जा रही थी। बकुलावलिका को देखकर कुमुदिका ने पूछा—सखी! कहाँ जा रही हो?

बकुलावलिका—महारानी धारिणी ने मुझे गणदास के पास यह पूछने को भेजा है कि मालविका उपदेश ग्रहण करने में कैसी है।

कुमुदिका—सखी! सुना जाता है कि संगीत-शिक्षा के बहाने आँखों से ओझल हुई मालविका को महाराज ने देख लिया। संगीत-शाला के नियमानुसार महाराज अकेले तो वहाँ जा नहीं सकते।

बकुलावलिका—हां ! चित्र में महारानी के पास उसे अंकित देखा था।

कुमुदिका—सो कैसे ?

बकुलावलिका—चित्रशाला में महारानी एक बार चित्रकार का ताजे भरे रंगों वाला एक चित्र देख रही थीं कि महाराज भी वहाँ आ पहुँचे। वह चित्र महाराज ने भी देखा और मालविका का चित्र देखकर पूछा—यह दासी तो नई है और महारानी के पास इसका चित्र है। इसका क्या नाम है ? जब बारबार पूछने पर भी कोई न बोला, तब वसुलक्ष्मी ने बता दिया कि यह मालविका है। तब से मालविका महाराज के सामने नहीं आने पाती।

इतना सुनकर कुमुदिका ने अपना मार्ग पकड़ा। बकुलावलिका भी गणदास को रंगशाला से बाहर निकलते देखकर उसके पास पहुँच गई और महारानी का संदेश सुना दिया।

गणदास ने संदेश के उत्तर में कहा—महारानी से निवेदन करना कि मालविका परम निपुण और बुद्धिमती है। मैं जो-जो प्रयोग उसे सिखाता हूँ, उस-उसको वह बढ़ा-चढ़ा कर मानो मुझे ही सिखाती है।

नाट्याचार्य को ऐसी चतुर शिष्या के विषय में जानने की इच्छा हुई। उसने पूछा—महारानी के हाथ मालविका लगी कैसे ?

बकुलावलिका—महारानी के एक भाई वीरसेन हैं, जिन्हें महाराज ने नर्मदा तट के सीमावर्ती दुर्ग पर नियुक्त कर रखा है। उन्हीं ने "यह कन्या ललित-कला की शिक्षा के योग्य है," ऐसा विचारकर इसे बहन को भेंट में भेज दिया है।

गणदास ने सोचा कि यह रूप से तो कोई उच्च कुल की कन्या जान पड़ती है। फिर बकुलावलिका से कहा—इसे शिक्षा देने में मुझे यश प्राप्त होगा। किसी ने कहा है कि जिस प्रकार

बादल का पानी समुद्र की सीप में पड़कर मोती बन जाता है, उसी प्रकार सुयोग्य पात्र में दी हुई गुरु की विद्या विशेष गुण-वाली हो जाती है।

उधर राजा अग्निमित्र को मंत्री वाहतक इस समय विदर्भ-राज का एक पत्र सुना रहे थे। उसमें लिखा था—"आपकी आज्ञा है कि 'आपका चचेरा भाई कुमार माधवसेन को जो विवाह-संबंध को प्रतिज्ञा से हमारे पास आ रहा था, आपके सीमा-दुर्ग के रक्षक ने मार्ग में ही आक्रमण करके पकड़ लिया है। हमारे प्रति स्नेह के कारण आपको उसे, स्त्री तथा बहन सहित, मुक्त करना उचित है। यह बात आपसे छिपी नहीं कि समान-वंश के राजाओं के साथ राजा लोगों का कैसा वर्ताव होता है। अतएव इस विषय में आपको तटस्थ रहना उचित है। वह जो बहन है, वह तो पकड़-धकड़ की गड़बड़ में कहीं खो गई है। मैं उसके ढूँढ़ने का प्रयत्न करूँगा। यदि अवश्य ही मुझे माधवसेन को छोड़ देना होगा तो आप भी हमारे साले मौर्य-सचिव को मुक्त कर दें।"

इस अदले-बदले के उत्तर से अपना अपमान समझ कर अग्निमित्र ने क्रोध दिखाते हुए वीरसेन को आज्ञा भिजवा दी कि विदर्भराज को समूल नष्ट कर दो।

वाहतक मंत्री "तथास्तु" कहकर चला गया।

इसी समय राजा के पास उनका मित्र गौतम आ पहुँचा। राजा ने उससे अपने काम के विषय में पूछा कि कोई उपाय सूझा। गौतम ने कान में कुछ कहा जिसे सुनकर राजा प्रसन्न हो गये। उन्होंने समझा कि मेरा मनोरथ अब पूरा हो जायगा।

इतने में एक ओर से किसी के झगड़ने का शब्द सुनाई दिया। कोई कह रहा था—बहुत आत्म-श्लाघा से क्या ?

राजा के सामने ही हमारी छोटाई-बड़ाई का निर्णय हो जायगा।

राजा ने यह सुनकर गौतम से कहा—मित्र! तुम्हारी सुंदर नीति के पेड़ में फूल खिलने लगे।

गौतम ने कहा—फल भी शीघ्र ही देखोगे।

इसी समय आचार्य हरदत्त और गणदास वहाँ आ पहुँचे। शिष्टाचार के अनंतर महाराज ने पूछा—उपदेश के समय दोनों आचार्य यहाँ कैसे आ पहुँचे?

गणदास ने निवेदन किया—महाराज! आज हरदत्त ने प्रधान सभ्यों के सामने मुझे यह कहकर कि मैं इसके चरण-रज-सा भी नहीं हूँ, मेरा घोर अपमान किया है।

हरदत्त—महाराज! इन्हीं ने पहले मुझे बुरा-भला कहा है। ये कहते थे कि तुममें और हममें समुद्र और गड़ही का-सा अंतर है। अतएव आप शास्त्र और प्रयोग में हमारी परीक्षा लें। महाराज ही हमारे निर्णायक हों।

गौतम ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। परंतु राजा ने महारानी और योगिनी के सामने ही न्याय करना उचित समझा, नहीं तो महारानी इसमें उनका पक्षपात समझतीं। इसलिए महारानी और योगिनी को वहाँ बुलाया गया।

राजा ने अपने आपको और महारानी को पक्षपाती समझकर योगिनी को मध्यस्थ बनाने का प्रस्ताव किया। दोनों आचार्यों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। पहले तो योगिनी ने टालना चाहा, परंतु अंत में उसे मध्यस्थ बनना स्वीकार करना ही पड़ा। महारानी को तो यह झगड़ा ही पसंद नहीं था।

गौतम का उत्तर बड़ा विनोद-पूर्ण था। उसने कहा—रानी! मेंढ़ों की लड़ाई देखते हैं। इन्हें व्यर्थ का वेतन देने से क्या लाभ?

राजा ने योगिनी से पूछा—इन दोनों का निर्णय कैसे किया जाय ?

योगिनी—कोई किसी कला में स्वयं निपुण होता है, और कोई दूसरे को उसकी शिक्षा देने में विशेष चतुर होता है। वास्तव में श्रेष्ठ गुरु वही है जिसमें ये दोनों गुण विद्यमान हों।

गौतम को तो इस विचार का समर्थन करना ही था, इसलिए वह तुरंत बोला—सुना, उपदेश देखकर निर्णय होगा।

हरदत्त और गणदास यह मान गये। धारिणी ने कहा—यदि मूर्ख शिष्या नाट्योपदेश बिगाड़ दे तो इसमें गुरु का क्या दोष ?

राजा—महारानी ! यह गुरु का ही दोष समझा जाता है। अयोग्य को शिक्षा देना ही गुरु की मूर्खता है।

महारानी प्रारंभ से ही सब समझ गई थीं। वे गणदास की ओर मुँह करके बोलीं—तुम्हारी शिष्या तो अभी थोड़े ही समय से शिक्षा पा रही है। उसे बुलाना नाट्योपदेश का अपमान करना है। परंतु गणदास न माना। उसने कहा—इसी लिए तो मेरा हठ है।

अब महारानी ने सोचा कि मेरी चाल नहीं चल सकती। उन्हें योगिनी पर क्रोध आता था। वे योगिनी के विषय में मन ही मन कहने लगीं कि यह मुझे जागती हुई को भी सोई हुई-सी समझती है। गणदास अब बहुत हठ करने लगा। विवश होकर महारानी को स्वीकृति देनी ही पड़ी। दोनों के उपदेश देखे जाने का निश्चय हुआ। उससे दोनों की छोटाई-बड़ाई विदित हो जायगी।

दोनों नाट्याचार्य संगीतशाला में प्रबंध करने चले गये। जाते समय उन्हें योगिनी ने आदेश दिया कि पात्रों को विरले

वस्त्र पहनाकर लाना, जिससे कि नृत्य के समय सारे शरीर का सौंदर्य प्रकट हो सके।

महारानी क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो रही थीं। राजा से कहने लगीं—यदि राज-कार्य में भी उपाय सोचने में महाराज की ऐसी चतुराई होती तो क्या ही अच्छा होता।

राजा—आप कुछ और बात न समझें। मैंने इसमें कुछ नहीं किया। प्रायः समान विद्यावाले एक दूसरे के यश से ईर्ष्या करते हैं। इतने में संगीत-शाला में से तबले की थाप सुनाई देने लगी। सब उधर चल पड़े।

—*२*—

संगीतशाला में राजा, गौतम, धारिणी, योगिनी आदि सब पधारे। जब मालविका ने नाट्याचार्य गणदास के साथ रंग-मंच पर प्रवेश किया, तब उसका रूप-लावण्य देखकर महाराज उस पर और भी लट्टू हो गये।

मालविका ने गाना आरंभ किया—

पीय-मिलन है कठिन छाँड़ु ताकी आसा हिय।
फरकत बाईं आँख सगुन केहिकर यहि मानिय॥
अब फिर दरसन होय हाय कब, तरसत मो जिय।
हौं परबस मैं परी हियो अरुझो तोसन पिय॥

इतना गा चुकने पर मालविका ने भाव का भी अभिनय किया। सोने में सुगंध हो गया। राजा पर इस अभिनय का तीव्र प्रभाव पड़ा। वे समझ गये कि मालविका मेरे प्रेम में पगी है। योगिनी ने निर्णय किया कि जो कुछ देखा है, वह सब निर्दोष है। यही सम्मति राजा ने प्रकट की। उन्होंने कहा—हरदत्त के लिए हमारा अभिमान जाता रहा।

गणदास ने अपनी आचार्य की उपाधि सफल समझी। वह मालविका को साथ लेकर चला गया और हरदत्त ने अपनी शिक्षा दिखाने के लिए आज्ञा माँगी।

राजा ने मन में कहा कि देखने का काम तो समाप्त हो गया। परंतु उससे प्रकट रूप में बोले—हाँ, हम उत्सुक हैं।

हरदत्त ने आज्ञा पाकर अपने आपको अनुगृहीत समझा। परंतु इसी समय वैतालिक के गान द्वारा सूचना मिली कि दोपहर हो गई।

'दोपहर हो गई' सुनकर गौतम बिना कुछ खाये कब चुप रह सकता था? वह कहने लगा—ओह! भोजन का समय हो गया। वैद्य कहते हैं कि ठीक समय पर भोजन न करना हानिकारक है। हरदत्त! तुम क्या कहते हो?

हरदत्त—यहाँ और कुछ कहने का अवकाश ही नहीं।

राजा ने भी कह दिया—अच्छा, तो आपकी शिक्षा कल देखेंगे। अब विश्राम कीजिये।

सभा विसर्जित हुई।

—※ ३ ※—

एक दिन योगिनी ने समाहितिका नाम की अपनी दासी को महाराज की वाटिका से, रानी को उपहार देने के लिए, चकोतरा लाने भेजा। वहाँ मधुकरिका मालिन ने समाहितिका दासी से पूछा—दोनों नाट्याचार्यों में से योगिनी ने किसके उपदेश को बढ़िया बताया?

समाहितिका—यश गणदास को ही मिला।

मधुकरिका—मालविका के विषय में कुछ अपवाद क्या सुना जाता है?

समाहितिका—हाँ, वह अपवाद ठीक है। अवश्य ही महाराज उस पर आसक्त हैं; परंतु वे महारानी धारिणी का हृदय दुखाना नहीं चाहते, इससे वे अपनी प्रभुता नहीं दिखाते। मालविका भी इन दिनों पहनी गई माला के समान मुरझा रही है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती। अच्छा, अब जाती हूँ।

मालिन भी साथ हो ली। वह महारानी से कहना चाहती थी कि रक्त अशोक वृक्ष के खिलने में देरी हो रही है। उसका मनोरथ पूरा करने का उपाय कर दीजिए। इस प्रकार दोनों वहाँ से चल पड़ीं। दासी तो कौशिकी योगिनी के पास चली गई, और मालिन महारानी धारिणी के पास।

इधर राजा मालविका के लिए व्याकुल थे। उनका किसी काम में चित्त नहीं लगता था। गौतम ने राजा को स्मरण कराया कि रानी इरावती ने निपुणिका द्वारा उन्हें रक्ताशोक और कुरबक की कलियों का उपहार भेजा था और कहलाया था कि "वसंत-उत्सव है, स्वामी के साथ झूला झूलने की मेरी इच्छा है।" यह संदेश पाकर आपने वहाँ पहुँचने के लिए वचन दिया था, सो वहाँ चलो। गौतम के साथ, राजा अब प्रमदावन को चल पड़े।

प्रमदावन की शोभा विचित्र थी। उस वन ने राजा को लुभाने के लिए, युवती के वेष को लजाने वाले, वसंत-काल के फूलों को धारण कर रक्खा था। भाँति-भाँति के फूल खिल रहे थे।

महारानी धारिणी की आज्ञा से मालविका उस समय प्रमदावन में आई थी। सरकंडे के समान पीले गाल और थोड़े आभूषणों से मालविका, वसंत के कारण पीले पत्ते और इने-गिने फूलों वाली चमेली की लता के समान हो रही थी। महारानी ने उससे कहा था कि गौतम की चपलता के कारण मैं झूले पर से गिर

गई थी और पैरों में चोट आ गई है। सो उन्होंने उसे आज्ञा दी थी कि तुम जाकर रक्ताशोक का मनोरथ पूरा करो और यदि पाँच दिन के भीतर इसके फूल निकल आयेंगे तो मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर दूँगी। मालविका बकुलावलिका की प्रतीक्षा करने लगी। वह पाज़ेब आदि आभूषण लेकर पीछे-पीछे आ रही थी।

गौतम और राजा की दृष्टि मालविका पर जा पड़ी। दैवयोग से वे उसके निकट ही थे। वे मालविका के हार्दिक भावों को प्रकट करने वाले वचनों को सुनने लगे। जब मालविका कह रही थी कि 'हे मन! तू ऐसा आश्रय-हीन असीम मनोरथ छोड़ दे। मुझे दुखी करने से तुझे क्या लाभ होगा?' तब राजा को निश्चय हो गया कि मालविका मुझसे प्रेम करती है।

कुछ समय के बाद महावर और पाज़ेब आदि लिये बकुलावलिका वहाँ आ गई और बोली—सखी! महारानी ने तुम्हें इस काम में लगा कर ठीक किया है। अपना एक पैर इधर बढ़ाओ। मैं महावर लगाकर पाज़ेब पहना दूँ। महारानी उत्सुक हैं कि वह अशोक शीघ्र फूल जाय।

यह सुनकर राजा ने समझ लिया कि यह अशोक का मनोरथ पूरा करने का उपाय है।

इसी समय रानी इरावती दासी निपुणिका के साथ वहाँ आ गई। निपुणिका ने देखा कि अशोक की छाया में बकुलावलिका मालविका के पैरों में महावर लगा रही है। मालविका को वहाँ देखकर इरावती चकित हुई। परंतु निपुणिका ने उसे बताया कि रानी के पैरों में, झूले से गिर पड़ने के कारण, पीड़ा हो रही है, इसीलिए उन्होंने अशोक की दोहद-पूर्ति के लिए मालविका को भेजा है। इरावती को यह सुनकर ईर्ष्या हुई। उसने महाराज से मिलने का विचार छोड़ दिया; वहाँ उस मामले को

तह तक पहुँचने का निश्चय किया। उसे किसी शंका ने घेर लिया। वे दोनों वहीं छिपकर उन दोनों को देखने लगीं।

उस समय वकुलावलिका मालविका के एक पैर पर महावर लगा चुकी थी। वह मालविका से पूछने लगी--कहो, महावर की रेखाएँ ठीक लगी हैं ?

मालविका—ऐसी चित्रकारी की शिक्षा तुझे किसने दी है ?

वकुलावलिका—महाराज ही मेरे गुरु हैं। तुम्हारा पैर तो लाल-कमल-सा जान पड़ता है। अब तुम सब प्रकार से महाराज की गोद में बैठने के योग्य हो गई हो।

रानी इरावती ने ये वचन सुन लिये; उसने निपुणिका की ओर देखा। वकुलावलिका निःशंक होकर और ऐसी ही बातें करती रही जिससे मालविका को विश्वास हो जाय कि राजा उसे चाहते हैं। रानी इरावती समझ गई कि यह कुटनी पहले ही से सिखाई हुई है।

बातों ही बातों में वकुलावलिका ने मालविका के दूसरे पैर पर भी महावर लगा दिया। उसने अब पाजेब पहनाकर कहा—सखी ! उठो; अशोक के फूल खिला देने वाली आज्ञा को पूरा करो।

अब इरावती को निश्चय हो गया कि यह काम महारानी के आदेश से हुआ है। अशोक पर लात मारकर मालविका बोली—यह क्या हमारा मनोरथ पूरा करेगा ?

वकुलावलिका—सखी ! इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं। यदि तुम्हारे पैरों से आदर पाकर भी यह न खिले तो यह अशोक ही निर्गुण होगा।

यह सब लीला देखकर राजा का मन मुग्ध हो गया और अपने मित्र गौतम से, उसके पास चलने के लिए, कहने लगे। गौतम ने भी कहा—हाँ, चलकर हँसी-ठट्ठा कर लेना चाहिए।

दोनों मालविका की ओर बढ़े। निपुणिका ने इन्हें देख लिया और रानी इरावती से कह दिया कि महाराज आ गये। इरावती तो पहले ही समझ रही थी कि महाराज यहीं कहीं होंगे।

गौतम ने आगे बढ़कर मालविका से कहा—तुम्हारे लिए क्या यह ठीक था कि महाराज के अशोक-वृक्ष को बायें पैर से ठुकराओ ?

मालविका और वकुलावलिका दोनों ठिठक गईं।

गौतम ने बकुलावलिका को डाँटकर कहा—क्यों री, तूने इसका अभिप्राय जानकर भी इस अनुचित काम से इसे नहीं रोका ?

मालविका डर गई। बकुलावलिका ने कहा—इसने तो महारानी की आज्ञा का पालन किया। इस काम में यह पराधीन है। महाराज इसे क्षमा करें।

ऐसा कहकर दोनों महाराज के चरणों पर गिर पड़ीं।

राजा—यदि ऐसा है तो तू निर्दोष है। उठ !

राजा ने मालविका का हाथ पकड़कर उठाया और कहा—अशोक-वृक्ष पर लात मारने से तुम्हारे कोमल चरण में चोट तो नहीं आ गई ?

मालविका लज्जित हो गई। उधर इरावती ने डाह से कहा—आह ! मेरे स्वामी का हृदय मक्खन का बना है।

मालविका बकुलावलिका से बोली—बकुलावलिका ! आओ, चलें। महारानी से निवेदन कर दें कि उनकी आज्ञा का पालन कर दिया।

बकुलावलिका ने कहा—महाराज से आज्ञा ले लो।

राजा—तो जाओगी ? अच्छा, पहले हमारी प्रार्थना सुन लो। अब हमारी भी कामना पूरी करना। मैं और किसी स्त्री को नहीं चाहता।

रानी इरावती ने यह सब सुन लिया। वह तुरंत आगे बढ़कर बोली—हाँ, हाँ, पूरी करो; अशोक-वृक्ष में तो केवल फूल आते हैं, यहाँ फल-फूल दोनों होंगे।

रानी इरावती को देखकर सब व्याकुल हो गये।

इरावती ने राजा को बुरा-भला कहा। बाद में उसने मालविका और बकुलावलिका को भी डाँट बताई। वे तो यह कह कर चलती बनीं कि हम भला कौन हैं, जो महाराज का हम पर प्रेम-अनुग्रह हो!

इरावती ने राजा से फिर कहा—पुरुष विश्वासघाती होते हैं। झूला झूलना आदि ठगने वाले तुम्हारे वचनों को सच्चा समझकर मैंने निःशंक हो यह तुम्हारा कपटाचरण न जाना था, जैसे शिकारी के गीत में अनुरक्त निःशंक हरिणी (अपनी विपत्ति) नहीं जानती।

राजा ने कुछ बहाना करना चाहा। कुछ और न सूझने पर उन्होंने यही कह दिया—रानी! मालविका से मुझे क्या काम? तुम्हारे आने में देरी हो रही थी, इसलिए मैंने उससे तनिक मनो-विनोद किया था।

इरावती—आप तो विश्वास के योग्य हैं। मुझे पता न था कि आपको मनोविनोद के लिए कोई ऐसी वस्तु मिल गई है; नहीं तो मैं अभागिन यहाँ न आती।

क्रुद्ध होकर रानी जाने लगी। राजा ने क्षमा माँगी, परंतु उसका पारा चढ़ा हुआ था, उसने राजा की एक न सुनी। वह कहने लगी कि मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं रहा। राजा ने उसके पैर तक छुए, किंतु वह बहुत बिगड़ रही थी; चली ही गई।

— ४ —

राजा मालविका के लिए डरने लगे। गौतम को उन्होंने मालविका का वृत्तांत जानने के लिए भेज रखा था और अब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

गौतम ने आकर कहा—उसका वृत्तांत तो वैसा ही है जैसा बिल्ली के पंजों में पड़ी कोयल का होता है। उसे महारानी ने बंदी-गृह में डाल रखा है। योगिनी ने मुझसे कहा है कि कल महारानी इरावती, बड़ी महारानी धारिणी के पास, उनके दुःख रहे पैरों का हाल पूछने गई थी। महारानी धारिणी ने जब पूछा कि क्या महाराज ने तुम्हें दर्शन दिये? तब इरावती ने कहा कि "यह पूछना व्यर्थ है। क्या आप नहीं जानतीं कि उनका प्रेम-भाव तो दासियों पर चला गया है!" महारानी ने बार-बार पूछकर इरावती से सब वृत्तांत जान लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मालविका और बकुलावलिका को बेड़ी पहने, पाताल में नाग-कन्याओं के समान अँधेरे स्थान में रहना पड़ रहा है। महारानी ने माधविका को आज्ञा दे रखी है कि मेरी नागमुद्रा देखे बिना इन चुड़ैलों को न छोड़ना।

यह सुनकर महाराज बड़े दुःखित हुए। वे ठंडी साँस लेकर कहने लगे कि क्या कुछ उपाय नहीं है? गौतम ने कहा—उपाय मैं आपके कान में कहता हूँ, जिससे कोई और सुन न ले।

गौतम ने महाराज के कान में कुछ कह दिया। उपाय सुनकर महाराज की बाछें खिल गईं। गौतम द्वारा बताये उपाय के अनुसार काम आरंभ कर दिया गया।

महाराज महारानी धारिणी का पैर देखने गये। कुछ ही समय के बाद यज्ञोपवीत से अँगूठा बाँधे गौतम व्याकुल-सा वहाँ आकर चिल्लाने लगा—"बचाइए, बचाइए। मुझे साँप ने डस लिया।"

यह सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये। राजा ने दुःखित होकर पूछा—आप कहाँ घूम रहे थे?

गौतम ने बताया—'महारानी को देखना है' इस कारण मैं फूल लेने के लिए प्रमदावन गया था।...

धारिणी बीच ही में बोल उठी—हाय! हाय!! मैं ही ब्राह्मण के जीवन-संकट का कारण हुई।

गौतम फिर कहने लगा—अशोक-वृक्ष के फूलों का गुच्छा तोड़ने के लिए मैंने ज्यों-ही हाथ बढ़ाया त्यों-ही कोटर से निकल कर काल-रूपी साँप ने मुझे डस लिया।

गौतम ने साँप के काटने के दो निशान दिखाये। अब ध्रुव-सिद्धि वैद्य को बुलाने के लिए जयसेना को भेजा गया। गौतम विष का फैलना दिखाता था। वह कहता था—हाय! मेरे अंग टूट रहे हैं। हाय! मैं मरा!

धारिणी—हाय, साँप ने बहुत बुरा काटा। ब्राह्मण को सँभालो। सेवक जनों ने गौतम को सहारा दिया।

गौतम राजा की ओर देखकर कहने लगा—महाराज! मैं आपका बचपन का मित्र हूँ। इसका विचार करके मेरी निपूती माता का पालन करना।

इतने में जयसेना ने लौटकर कहा कि वैद्य ध्रुवसिद्धि ने गौतम को वहीं बुला भेजा है। राजा ने गौतम को सेवकों द्वारा सहारा दिलाकर वैद्यराज के पास भेज दिया।

जाते समय गौतम महारानी से कहता गया कि "महाराज की सेवा में मैंने आपके जो अपराध किये हों, उन्हें क्षमा करना।" धारिणी ने उसे सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद दिया।

गौतम को देखकर वैद्य ने जल-कुंभ बनाने के लिए, जयसेना से कहा कि कहीं से नागमुद्रा मँगवाओ। जयसेना ने आकर

निवेदन किया। धारिणी ने यह सुनकर अपनी अंगुली से उतार कर नागमुद्रा दे दी और कह दिया कि फिर इसे मुझे ही दे जाना।

राजा ने भी कहा—जयसेना! अपना काम करके नागमुद्रा शीघ्र लौटा जाना।

कुछ समय के अनंतर जयसेना ने आकर सूचना दी कि गौतम का विष दूर हो गया। फिर उसने महाराज से निवेदन किया कि किसी राज-काज के कारण मंत्री आपके दर्शन करना चाहते हैं।

राजा बाहर चले गये। जयसेना भी उनके साथ हो ली। दोनों ही गुप्त मार्ग से प्रमदावन को चले। मार्ग में गौतम मिल गया। उसने महाराज से कहा—बधाई हो! आपका कार्य सिद्ध हो गया।

अब महाराज ने जयसेना को लौटा दिया। उन्होंने गौतम से पूछा—माधविका तो बड़ी चतुर है। क्या उसने यह नहीं पूछा कि इन दोनों बंदिनियों को मुक्त करने का कारण क्या है? महारानी ने अपने सेवक को छोड़कर आपको क्यों भेजा?

गौतम—उसने पूछा तो था; किंतु मैंने कह दिया कि महाराज को ज्योतिषियों ने बताया है कि आपके ग्रह अच्छे नहीं हैं। सब बंदी छुड़वा दीजिए।" यह सुनकर इरावती के भावों की रक्षा के विचार से, धारिणी ने मुझे ऐसी आज्ञा दी है जिससे यह सब समझें कि राजा ने इनको छोड़ दिया है। माधविका ने इस कारण को ठीक समझकर मालविका और बकुलावलिका को छोड़ दिया। मैं उन्हें समुद्र-गृह में बैठा आया हूँ।

महाराज ने गौतम की बड़ी प्रशंसा की और उसे सहर्ष छाती से लगा लिया। अब दोनों समुद्र-गृह की ओर चल पड़े। वहाँ पास ही इरावती की दासी चंद्रिका फूल चुन रही थी। उसे देखकर ये दोनों ओट में हो गये। वहाँ से राजा एक झरोखे से

यह देखने लगे कि कुंज में बैठी मालविका और बकुलावलिका क्या सचमुच ही मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं।

उस समय बकुलावलिका और मालविका दोनों ही चित्र में महाराज को देखकर प्रणाम कर रही थीं। बाद में मालविका ने कहा—सखो ! उस दिन महाराज के रूप-दर्शन से आज जैसी तृप्ति नहीं हुई थी। आज भले प्रकार उन्हें निहार लिया। फिर इरावती की ओर महाराज की स्नेह-दृष्टि देखकर मालविका कुछ निराश-सी हो गई। बकुलावलिका ने उसे और चिढ़ाने के विचार से कहा—अरी ! यह महाराज की लाड़ली है।

मालविका—तो फिर मैं क्यों दुःख सहन करूँ ? इतना कहकर उसने क्रोध से मूँह फेर लिया।

इसी समय राजा और गौतम भीतर चले गये। दोनों ने राजा का स्वागत किया। तब गौतम तो, अशोक-वृक्ष को हरिण से बचाने के बहाने, बकुलावलिका को साथ लेकर, बाहर चला गया, केवल मालबिका और राजा भीतर रह गये।

बकुलावलिका कहीं पेड़ों के पीछे छिप गई। गौतम बाहर दरवाजे पर ठहर गया और शिला के सुखदायी स्पर्श के कारण लेट कर सो गया।

कुछ समय के बाद चंद्रिका से निपुणिका को विदित हो गया कि गौतम समुद्र-गृह के दरवाजे पर सो रहा है। निपुणिका ने यह वृत्तांत रानी इरावती से कह दिया। इरावती निपुणिका के साथ, मृत्यु-संकट से बच गये गौतम को देखने के लिए, और चित्रगत महाराज के प्रति आदर-भाव दिखाने के लिए, समुद्र-गृह की ओर आ गई। इरावती के लिए हृदय-शून्य महाराज और उनके चित्र में कुछ अंतर न था। इसलिए इरावती ने अपने अशिष्टाचार का परिमार्जन करने के लिए महाराज का चित्र ही

पर्याप्त समझा। वहाँ पहुँच कर निपुणिका ने गौतम को समुद्र-गृह के दरवाज़े पर सोते देखा। वह नींद में भी मालविका का नाम लेकर कह रहा था कि तुम इरावती से बढ़ जाओ !

निपुणिका ने गौतम को डराने के अभिप्राय से उस पर लकड़ी फेंक दी। गौतम शीघ्र उठकर चिल्लाने लगा—हाय रे ! मेरे ऊपर साँप गिर पड़ा।

यह सुनकर राजा शीघ्र बाहर निकल आये। महाराज को साँप के निकट जाने से रोकती हुई मालविका भी बाहर आ गई। वकुलावलिका ने भी प्रकट होकर संकेत-द्वारा राजा को रोका परंतु तब वे बाहर निकल चुके थे।

गौतम ने लकड़ी देखकर कहा—क्या ? यह लकड़ी है ? मैं तो समझा था कि केतकी के काँटों से जो मैंने साँप के डसने का-सा चिह्न बनाया था, वह सचमुच हो गया।

इरावती ने उन सबको देख लिया। उसने वकुलावलिका से कहा—कुटनी ! तूने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली।

वकुलावलिका ने हाथ जोड़कर कहा—महारानी मेरे ऊपर प्रसन्न हों। मेंढकों के टर्राने से क्या इंद्र पृथ्वी को भूल जाता है ? नहीं, वह तो और भी अधिक वर्षा करके पृथ्वी के लिए अपना अनुराग प्रकट करता है।

राजा ने बहाना किया कि उत्सव के दिन सेवकों को, अपराध करने पर भी छोड़ देना चाहिए। इसलिए मैंने इन दोनों को भी छोड़ दिया है। इसी से ये दोनों मुझे धन्यवाद देने आई थीं।

इसी समय जयसेना व्याकुल-सी वहाँ आई और कहने लगी—महाराज ! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ते समय बंदर से डर गई है। वह महारानी की गोद में बैठी भी काँप रही है; उसका चित्त स्वस्थ नहीं होता।

यह घटना सुनकर इरावती ने महाराज को वहाँ शीघ्र पहुँच कर उसे धीरज बँधाने को कहा। राजा शीघ्र ही कुमारी के पास चल दिये। इरावती, गौतम आदि सब चले गये। केवल मालविका और बकुलावलिका वहाँ खड़ी डर रही थीं। परंतु इसी समय उन्हें मालिन का शब्द सुनाई दिया कि अशोक पाँच दिन के भीतर ही खिल उठा है। यह सुनकर दोनों प्रसन्न हो गईं और मालिन का शब्द पहचानकर उसके पीछे-पीछे ही चल पड़ीं।

—※ ५ ※—

पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा का उपराज बना दिया था। पुष्यमित्र ने अश्वमेधयज्ञ के लिए घोड़ा छोड़ा और उसकी रक्षा के लिए कुमार वसुमित्र को नियुक्त किया। यह सूचना पाकर कुमार की दीर्घायु के निमित्त महारानी धारिणी दान-पुण्य करने लगीं।

एक दिन धारिणी मंगल-गृह में बैठी थीं कि विदर्भ से आये अपने भाई के पत्र से उन्हें विदित हुआ कि महाराज की विजयी सेना ने वीरसेन की अध्यक्षता में, विदर्भ-राज को हरा दिया और माधवसेन मुक्त करा दिये गये।

वीरसेन ने उस दूत को, जिसके हाथ पत्र आया था, अमूल्य रत्न आदि भेंट देकर, कला-निपुण दासियों सहित, महाराज की सेवा में भेजा था। वह अगले दिन महाराज के दर्शन करने वाला था।

इस विजय के समाचार से सारे राज-भवन में प्रसन्नता छा रही थी। महारानी धारिणी की प्रसन्नता का एक और कारण भी था। गौतम को भी वह विदित हो चुका था। उसने राजा से कहा—मुझे जान पड़ता है कि आप शीघ्र ही बड़े सुखी होंगे।

राजा—कैसे ?

गौतम—महारानी ने आज चतुर कौशिकी (योगिनी) से कहा है कि आपको शृंगार की चतुराई का गर्व है; सो मालविका के शरीर पर विवाह-काल का-सा शृंगार कर दीजिए। इस कारण मालविका विशेष आभूषणों से सजाई गई है। आशा है, महारानी आपका मनोरथ पूरा कर देंगी।

राजा—मित्र! महारानी धारिणी सदा मेरे अनुकूल रही हैं। संभव है, मेरी ओर से ईर्ष्या-रहित होकर उसने ऐसा किया हो।

इतने में जयसेना ने आकर महाराज से निवेदन किया—फूल खिलने के कारण रक्ताशोक की शोभा देखने के लिए महारानी ने आपको बुलाया है। आप वहाँ पधार कर उनके प्रयत्न को सफल करें। वे स्वयं वहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

अग्निमित्र ने प्रस्ताव स्वीकार कर जयसेना को भेज दिया और गौतम के साथ आप भी प्रमदावन की ओर चल पड़े।

राजा ने प्रमदावन पहुँचकर वहाँ की विचित्र शोभा देखी। वसंत अपने पूरे यौवन पर था। अशोक वृक्ष ने लाल फूलों की चादर ओढ़ रक्खी थी। मालविका का भी रूप-लावण्य आज खिल उठा था। यद्यपि वह अपने शृंगार का कारण जानती थी, तथापि उसे विश्वास नहीं होता था। कमल-पत्र पर जल की बूँद की नाईं उसका हृदय काँप रहा था। परंतु बाईं आँख फड़कने से उसे शुभ सूचित हो रहा था।

महाराज जब वहाँ पहुँच गये, तब महारानी धारिणी ने मालविका को पास खड़ी किये ही उनका स्वागत किया। महाराज अशोक वृक्ष की शोभा देखकर बैठे ही थे कि मंत्री ने सूचना भेजी कि विदर्भ से जो कला-निपुण दो स्त्रियाँ आई थीं, वे मार्ग के परिश्रम से थकी होने के कारण आपकी सेवा में नहीं भेजी गई थीं। अब वे आपकी सेवा के योग्य हैं। कहिए, क्या आज्ञा है?

महाराज ने दोनों को बुला भेजा। उन्होंने आकर राजा और रानी को प्रणाम किया और महाराज की आज्ञा पाकर बैठ गईं।

राजा—तुम लोगों ने कौन सी कला सीखी है?

दोनों—हम संगीत में कुशल हैं।

राजा—महारानी! इनमें से एक को तुम ले लो।

धारिणी—मालविका! इधर देखो। तुम्हें संगीत के समय कौन-सी सहकारिणी ठीक पड़ेगी?

मालविका का नाम सुनकर आगंतुक दोनों स्त्रियों ने उसे पहचान लिया। वे हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं। मालविका और ये स्त्रियाँ आँसू गिराने लगीं। सब लोग साश्चर्य देखने लगे।

राजा ने पूछा—तुम दोनों कौन हो और यह कौन है?

दोनों—महाराज! यह हमारी राजकुमारी है!

राजा—कैसे?

दोनों—महाराज! सुनिए। विदर्भ देश के राजा को जीत कर आपने जिस कुमार माधवसेन को छुड़ाया है, उसी की यह छोटी बहन है।

धारिणी सुनकर चकित हुईं। बोलीं—ओह! यह राजकुमारी है। मैंने चंदन जैसी लकड़ी को, खड़ाऊँ बनाकर, दूषित किया।

राजा ने इस अवस्था का कारण जानना चाहा। उन्होंने पूछा कि यह दशा कैसे हुई? मालविका ने लंबी साँस लेकर मन-ही-मन कहा कि दैव-योग के कारण।

राजा के उत्तर में दूसरी कला-निपुण स्त्री ने कहा—जब कुमार माधवसेन पकड़े गये, तब उनके मंत्री सुमति इन्हें, हम लोगों से छिपाकर, न जाने कहाँ ले गये थे।

इसके आगे का वृत्तांत इस स्त्री को ज्ञात न था। तब

योगिनी ने कहा कि मुझसे पूछिए। योगिनी के शब्द से इन दोनों ने पहचान लिया कि यह कौशिकी है। योगिनी ने अब आगे का वृत्तांत कहना आरंभ किया—मेरे बड़े भाई सुमति माधवसेन के मंत्री थे। जब उनकी यह दशा हुई तब आपके साथ संबंध करने की इच्छा से इनको मेरे संग लेकर वे विदिशा के कुछ यात्रियों के साथ चले। दिन की यात्रा समाप्त कर बन के बीच में ही वे विश्राम के लिए ठहरे। वहाँ धनुष-बाण लिये डाकुओं ने घेर लिया। सैनिकों ने कुछ समय तक उनका सामना किया, परंतु अंत में वे भाग गये। राजकुमारी की रक्षा करते हुए सुमति ने अपने प्राणों द्वारा स्वामी का ऋण चुका दिया।

इतना कहने पर योगिनी के आँसू निकल आये। वे दोनों कला-निपुण स्त्रियाँ भी दुखित हुईं। राजा ने उन्हें धीरज बँधाया और योगिनी ने आगे कहना आरंभ किया—तब मैं मूर्च्छित हो गई। जब मुझे चेत हुआ तब इनका पता न था। मैंने भाई का दाह-संस्कार किया और गेरुआ वस्त्र धारणकर आपके राज्य में प्रवेश किया। यहाँ आकर मैंने देखा कि मालविका वीरसेन द्वारा डाकुओं के हाथ से बचकर महारानी के पास आ गई है। बस, यही इसकी कहानी का अंत है।

महारानी ने योगिनी से कहा—आपने अच्छा नहीं किया, जो मालविका के उच्च कुल में उत्पन्न होने का वृत्तांत मुझसे नहीं कहा।

योगिनी—इसका एक कारण था। जब इसके पिता जीवित थे, तब यात्रा से लौटकर एक सिद्ध ने मेरे सामने उनसे कहा था कि यह कन्या एक वर्ष तक दासी बनकर रहेगी और तब इसे अपने योग्य वर मिलेगा। आपकी सेवा में इसका कर्म-भोग कटता देखकर मैं समय की प्रतीक्षा करती रही।

इस समय कंचुकी ने आकर निवेदन किया—मंत्री जी कहते हैं कि विदर्भ के विषय में हमें जो निश्चित करना था वह कर लिया है। अब आप अपना मत प्रकट करें।

राजा—हमारी तो इच्छा है यज्ञसेन और माधवसेन को राज्य बाँट दिया जाय। वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण के प्रदेश दो भागों में बाँट दिये जायँ।

कंचुकी ने यह आज्ञा मंत्रि-परिषद् को जा सुनाई और फिर लौटकर कहा कि मंत्रि-परिषद् इस आज्ञा का सहर्ष अनुमोदन करती है।

राजा—यही आज्ञा लिखवाकर वीरसेन के पास भेज दी जाय।

इतने में पुष्यमित्र का, उपहार-सहित, एक पत्र आया। ससुर का पत्र आया सुनकर धारिणी को पुत्र के विषय में चिंता हुई। राजा ने पत्र पढ़ना आरंभ किया। पत्र से विदित हुआ कि "राजसूययज्ञ का घोड़ा यवनों द्वारा सिंधु नदी के दक्षिण तट पर पकड़ा गया था। उस पर बड़ा युद्ध हुआ था। धनुर्वीर वसुमित्र ने शत्रु-दल को हरा दिया और घोड़ा छीन लिया। अंत में लिखा था, इसलिए आपको बिना समय खोये, क्रोध रहित हो, यज्ञोत्सव में स्त्रियों-सहित सम्मिलित होना चाहिए।"

कुमार की विजय पर सब को असीम हर्ष हुआ। प्रसन्न होकर राजा ने यज्ञसेन के साले मौर्य-सचिव तथा अन्य बंदियों को छोड़ दिया।

महारानी धारिणी को तो अपार हर्ष हुआ। उन्होंने महाराज को मालविका सौंपने की इच्छा की। अब उसे राजकुमारी जानकर इरावती ने भी सहर्ष इस प्रस्ताव का अनुमोदन भेज दिया। धारिणी ने मालविका को दुलहिन बनाकर राजा को अर्पण कर

दिया । राजा लजाते हुए चुप रहे । रानी ने इसमें अपना अपमान समझा।

गौतम ने रानी से कहा बुरा मत मानिए । यह लोक-व्यवहार है । नया वर लजाता ही है ।

रानी ने राजा से फिर मालविका को ग्रहण करने को कहा । राजा अब रानी की आज्ञा टाल न सके ।

विक्रमोर्वशी

—※ १ ※—

पुरूरवा नाम के एक प्रसिद्ध चंद्र-वंशी राजा थे। इनकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर थी। एक बार ये सूर्योपासना से निपटकर रथ में लौट रहे थे कि इन्हें कुछ वचन सुन पड़े—'रक्षा करो, रक्षा करो, जो कोई देवताओं का सहायक हो, अथवा आकाशगामी हो, वह हमारी रक्षा करें।' पर-दुःख के हटाने में चतुर राजा पुरूरवा शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये और उनसे भय का कारण पूछने लगे। सामने भयभीत रंभा, सहजन्या और मेनका आदि अप्सराएँ खड़ी थीं।

रंभा कहने लगी—सुनिए, महाराज! हमारी प्रिय सखी उर्वशी विशेष तप से शंकित महेंद्र का सुकुमार अस्त्र है, वह रूप में लक्ष्मी से भी श्रेष्ठ है और वही स्वर्ग की शोभा है। वह, चित्रलेखा सहित, कुबेर के भवन से लौट रही थी कि मार्ग में, हिरण्यपुर-निवासी केशी दैत्य ने उन दोनों को बंदी कर लिया है। वह दुष्ट दानव उन्हें पकड़कर पूर्वोत्तर दिशा को ले गया है।

पुरूरवा ने भय का कारण जानकर अप्सराओं को धीरज दिया और हेमकूट पर्वत पर प्रतीक्षा करने का निर्देश कर वे स्वयं उर्वशी को छुड़ाने के लिए चले गये। इनके रथ के वेग

के आगे गरुड़ की गति भी कुछ न थी। भला उसके लिए उस दैत्य का पकड़ना क्या कठिन था?

उधर रंभा आदि अप्सराएँ हेमकूट पर राजा पुरूरवा की प्रतीक्षा करती हुई, इनकी विजय की संभावना के विषय में, बातचीत कर रही थीं। इनकी विजय के संबंध में रंभा के संदेह करने पर मेनका ने कहा—सखी! तू कुछ संदेह न कर। युद्ध में संकट पड़ने पर इंद्र भी इन्हें सादर बुलाकर विजयिनी सेना का सेनापति बनाते हैं।

उधर राजा ने दैत्य को शीघ्र ही पकड़ लिया। उसे अपने विक्रम द्वारा हरा कर इन्होंने उर्वशी को छुड़ा लिया। फिर चित्रलेखा को भी छुड़ाकर दोनों को अपने रथ पर बिठा लिया। भयभीत उर्वशी अभी तक रथ पर मूर्च्छित पड़ी थी। उसका हृदय जल्दी-जल्दी धड़क रहा था। वह जब सचेत हुई तब सखी से पूछने लगी—"क्या प्रभावशाली इंद्र ने मुझ पर अनुग्रह किया है?" चित्रलेखा ने बताया कि महेंद्र ने नहीं, बल्कि उन्हीं के समान प्रतापी राजर्षि पुरूरवा ने।

अब उर्वशी ने राजा की ओर देखकर समझा कि दैत्य ने तो मुझ पर उपकार ही किया है; नहीं तो ऐसे पुरुष के दर्शन कैसे होते? राजा पुरूरवा के हृदय को उर्वशी के अलौकिक रूप-लावण्य ने विशेष रूप से खींचा। परस्पर संभाषण द्वारा इनके वचनों से स्पष्ट हो गया कि दोनों प्रेम-पाश में बँध गये हैं।

अप्सराओं ने जब रथ को दूर से आते देखा तब वे बहुत प्रसन्न हो उठीं। रंभा ने सहर्ष कहा—प्रिय सखी! जिस प्रकार विशाखा नक्षत्र से भगवान् चंद्रमा अतीव रमणीय हो जाते हैं, उसी प्रकार चित्रलेखा सहित उर्वशी से राजा पुरूरवा सुशोभित हो रहे हैं! महाराज को अक्षत-शरीर तथा अपनी सखी को सकुशल

देखकर सखियों को अपार हर्ष हुआ। उन्होंने महाराज का यथोचित सत्कार किया। उर्वशी अपनी उत्कंठित सखियों से मिली। यह दृश्य अवर्णनीय था। प्रत्येक सखी उसे अपने हृदय से लगाती थी। इस पुनर्मिलन के मूल कारण राजा पुरूरवा ही थे। इसलिए वे इनकी विशेष कृतज्ञ थीं। वे महाराज की बार-बार प्रशंसा करती थीं और प्रार्थना करती थीं कि ये सैकड़ों वर्ष राज्य करें!

इस समय आकाश में किसी के रथ का शब्द सुनाई पड़ा। बाहु-भूषणों से सजा कोई देदीप्यमान पुरुष आकाश से उतरता दिखाई दिया। अप्सराओं ने समझ लिया कि गंधर्व-राज चित्ररथ आ रहे हैं।

इतने में चित्ररथ वहाँ पहुँच गये। उन्होंने यह संदेश कहा— महर्षि नारद जी द्वारा यह सुनकर कि केशी दैत्य उर्वशी को हर ले गया है, इंद्रदेव ने उसके उद्धार के लिए एक चतुरंगिणी सेना भेजी थी। परंतु मार्ग में ही भाटों से आपका विजय-गान सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। आप उर्वशी को साथ लेकर इंद्रदेव को दर्शन दीजिए। निःसंदेह आपने उनका बड़ा उपकार किया है।

पुरूरवा—प्रिय मित्र! ऐसा मत कहो। यह इंद्रदेव का ही प्रताप है जो उनके पक्ष के लोग शत्रुओं पर विजय पाते हैं। पर्वत की कंदरा में गूँजनेवाली सिंह की प्रतिध्वनि भी हाथियों को भगा देती है। जो साथ चलने के लिए तुमने मुझसे कहा है, सो मित्र! अत्यावश्यक कार्य के कारण इस समय देवराज मुझे क्षमा करें। उर्वशी को प्रभु के पास आप ही पहुँचा दें।

चित्ररथ के साथ अप्सराएँ चलने लगीं। उर्वशी ने एकांत में सखी चित्रलेखा से कहा—मैं उपकारी महाराज से विदा

माँगने में असमर्थ हूँ, इसलिए तू ही मेरी ओर से पूछ कि महाराज आज्ञा दें तो मैं इनकी कीर्ति को स्वर्ग में ले जाऊँ।

चित्रलेखा के ऐसा कहने पर राजा पुरूरवा ने समझ लिया कि यह जाने के लिए आज्ञा माँगती है। इन्होंने कहा—हाँ, जाओ परंतु फिर दर्शन देना।

इसके अनंतर अप्सराएँ और चित्ररथ आकाश में उड़ने लगे। उड़ते ही उर्वशी की एक लड़ीवाली वैजयंती माला, लता की शाखा में उलझ गई। उर्वशी ने लौटकर बहाने से राजा की ओर देखकर चित्रलेखा से उसे छुड़ाने को कहा।

चित्रलेखा ने हँसकर कहा—यह तो भली-भाँति उलझ गई है। इसको सुलझाना कठिन है। तब भी यत्न करती हूँ।

उर्वशी भी उसके अभिप्राय को समझ गई थी। वह मुस्कराकर बोली—प्रिय सखी ! अपने इन वचनों को स्मरण रखना।

चित्रलेखा माला सुलझाने लगी। उर्वशी को अपनी ओर दृष्टि किये देखकर राजा ने मन-ही-मन कहा कि स्वर्ग को जा रही उर्वशी के जाने में विघ्न पहुँचाकर लता ने मेरा बड़ा उपकार किया है। इसलिए मैं उस कमल-नयनी को फिर देख सका हूँ, जो मेरी ओर आधा मुख किये हुए है।

माला सुलझ जाने पर उर्वशी राजा की ओर देखती हुई, दूसरी सखियों और चित्ररथ के साथ, चली गई।

राजा पुरूरवा रथ में बैठकर अपने स्थान को चल पड़े। इनके चित्त में उर्वशी ही समा रही थी। परंतु इन्हें यह मनोरथ दुर्लभ जान पड़ा।

—*२*—

राजा पुरूरवा का मित्र माणवक, राजा के रहस्य से फूला हुआ, वैसे ही अपनी जीभ को पुरुषों के बीच वश में नहीं रख सकता था, जैसे ब्रह्मभोज में आमंत्रित ब्राह्मण मिष्टान से पेट भर जाने पर भी अपनी जीभ को वश में रखने में असमर्थ हो जाता है। उसे डर था कि यह रहस्य कहीं उसके मुँह से प्रकट न हो जाय। इसलिए जब तक राजा न्यायासन पर बैठे थे, वह जन-शून्य विमान-परिच्छंद नाम के प्रासाद में जाकर बैठा रहा।

इस समय माणवक को ढूँढ़ती हुई निपुणिका दासी वहाँ आ पहुँची। उसे महारानी ने, माणवक से राजा का रहस्य जानने के लिए, भेजा था। उसे देखते ही माणवक के हृदय को तोड़-फोड़कर राज-रहस्य बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा। माणवक ने निपुणिका से इधर आने का कारण पूछा।

निपुणिका—महारानी ने कहा है कि आप सदा मेरे पक्षपाती रहे हैं। अनुचित क्लेश से मुझ दुखिया की आप कभी उपेक्षा नहीं करते।........

माणवक ने पूरा संदेश सुने बिना ही कहा—क्या मेरे मित्र पुरूरवा ने महारानी का कुछ अपराध किया है?

निपुणिका—जिस स्त्री के विरह में महाराज पीड़ित हैं, उसी का नाम लेकर उन्होंने देवी को पुकारा था।

अब तो माणवक को निश्चय हो गया कि महाराज ने स्वयं ही रहस्य खोल दिया है। फिर उसे अपनी जीभ बंद रखकर दुःख भोगने की क्या आवश्यकता? वह तुरंत कहने लगा—क्या महाराज ने महारानी को उर्वशी कहकर पुकारा था?

निपुणिका—हाँ, आर्य ! उर्वशी कौन है ?

माणवक—उर्वशी एक अप्सरा है। उसके दर्शन से उन्मत्त होकर महाराज मुझे भी भोजन आदि न देकर कष्ट पहुँचा रहे हैं। मेरी ओर से तू महारानी से कह दे कि मैं तो महाराज को इस मृग-तृष्णा से हटाते-हटाते थक गया हूँ। अब उर्वशी के दर्शन मिलने पर ही उन्हें संतोष होगा।

दासी अपना उद्देश्य सिद्ध कर महारानी के पास चली गई।

महाराज जब वहाँ आते दिखाई पड़े तब माणवक भी उठकर उनके पास चला गया। पुरूरवा को तो उर्वशी की ही धुन लगी थी। माणवक ने महाराज को देखकर मन में कहा—बेचारी महारानी अवश्य बहुत दुःखी हो रही हैं।

राजा ने यह विचारकर कि इसने रहस्य खोल तो नहीं दिया, उससे पूछा—मित्र ! रहस्य को तुमने प्रकट तो नहीं कर दिया ?

माणवक ने मन में सोचा कि वह निपुणिका मुझे ठग ले गई है। परंतु महाराज से कुछ न कहा। राजा के फिर प्रश्न करने पर कहने लगा—मैंने तो अपनी जीभ इस प्रकार वश में कर रक्खी है कि मैं आपके सामने भी इस रहस्य को कहने में असमर्थ हूँ। और किसी की क्या बात ?

उर्वशी के कारण व्याकुल हो रहे राजा पुरूरवा मनोविनोद के लिए प्रमदावन में गये। वहाँ उनकी व्याकुलता और बढ़ गई। दक्षिण वायु चल रही थी, वसंत ऋतु थी। वन की शोभा रमणीय थी। वसंत-लक्ष्मी का पूरा साम्राज्य था।

प्रमदावन में पहुँचकर दोनों माधवी-लता के मंडप में रक्खी हुई स्फटिक-शिला पर विश्राम करने लगे। परंतु पुरूरवा को विश्राम कहाँ ? उन पर मनोहर दृश्यों का प्रभाव उलटा ही पड़ता था। स्वयं कुछ उपाय सोचने में असमर्थ राजा ने माणवक से

कहा—मित्र! अभी तक तुमने उसके पाने का कोई उपाय नहीं बताया।

माणवक—सोचता हूँ, किंतु विलाप करके मेरी समाधि भंग न कर देना।

इस समय राजा का चित्त आप ही कुछ शांत हो गया। इन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो मनोरथ सिद्ध होकर सामने खड़ा है।

उधर उर्वशी राजा पुरूरवा के लिए व्याकुल हो रही थी। वह विमान लेकर इनसे मिलने आई। उसके साथ चित्रलेखा थी। मार्ग में चित्रलेखा ने पूछा कि बिना प्रयोजन कहाँ जा रही हो? उर्वशी ने उसे हेमकूट पर्वत से चलते समय का स्मरण कराया। चित्रलेखा समझ गई कि यह राजा पुरूरवा के पास जा रही है।

उर्वशी—ऐसे मार्ग से चलो जिससे कुछ बाधा न हो।

चित्रलेखा—सखी! भय मत कर। बृहस्पति ने 'अपराजिता' नाम की केश-बंधन विद्या हमें सिखा दी है। इसके प्रभाव से हमें दैत्यों से भय नहीं है।

ये दोनों जब प्रमद वन में पहुँच गईं तब 'तिरस्करिणी विद्या' द्वारा छिपकर, महाराज के पास खड़ी हो, उनकी बातचीत सुनने लगीं।

राजा पुरूरवा ने माणवक से उर्वशी को पाने के लिए उपाय सोचने को कहा था। अब वह राजा से कहने लगा—मित्र! मैंने उस दुर्लभ स्त्री के पाने का उपाय सोच लिया है।

राजा अपने विचार में मग्न थे। वे चुप रहे। उर्वशी को संदेह हुआ कि किसी और स्त्री की प्रशंसा तो नहीं है।

माणवक के फिर दुहराने पर राजा ने कहा—कहो, कौन-सा उपाय है?

माणवक—स्वप्न में मिलाप करानेवाली नींद का सेवन कीजिए, अथवा उर्वशी का चित्र बनाकर मनोविनोद कीजिए।

यह सुनकर उर्वशी प्रसन्न हो गई। वह समझ गई कि राजा मेरे लिए ही उत्कंठित हैं।

परंतु राजा ने कहा—सदैव उर्वशी की चिंता रहने से मुझे नींद नहीं आती, और फिर उस प्रिया का चित्र बनाते समय नेत्रों में आँसू भर आवेंगे। इस प्रकार दोनों उपाय ठीक नहीं है।

उर्वशी ने भी यह उत्तर सुना। परंतु अभी उसका अविश्वास न हटा।

माणवक—मेरी बुद्धि की पहुँच तो यहीं तक है।

राजा अब फिर निरुपाय हो गये। दुःखित होकर कहने लगे—वह मेरे मानसिक दुःख की गहरी पीड़ा को नहीं जानती, अथवा दैवी शक्ति से जानकर भी मेरा अपमान कर रही है।

अब तो उर्वशी का राजा के प्रेम पर पूरा विश्वास हो गया। तुरंत भोज-पत्र पर कुछ लिखकर उसने नीचे फेंक दिया। पत्र में लिखा था—

स्वामी जस संभावन कीन्ह्यो मोहिं अजान बनाय के ;
तामें कछु अपराध नहीं, यह दशा प्रेम में आय कै।
पारिजात-सयनीयहु पर मोहिं नहीं सांति को लेस है ;
नंदन-वन की त्रिविध बयारी मानहु अग्नि विशेष है ॥

माणवक ने उस पत्र को गिरते देखकर उठा लिया और कहा—निस्संदेह उर्वशी ने आपका विलाप सुनकर गुप्त रीति से यह प्रेम-पत्र लिखा है।

राजा ने पत्र पढ़कर सहर्ष कहा—मित्र! तुम्हारा अनुमान ठीक है। राजा ने उसे भी पत्र पढ़कर सुनाया।

माणवक—तो अब आपको कुछ धीरज बँधा ?

राजा—धीरज कैसा? अब तो उर्वशी मिल गई समझनी चाहिए।

राजा ने यह सोचकर कि अँगुलियों के पसीने से अक्षर मिट न जायँ, वह पत्र माणवक को सुरक्षित रखने के लिए दे दिया। राजा की सेवा के लिए उर्वशी जब तक अपने अधीर मन को स्थिर करने लगी तब तक चित्रलेखा को महाराज के पास विषय के अनुकूल बातचीत करने के लिए, भेज दिया।

महाराज ने चित्रलेखा का स्वागत करके कहा—जो पुरुष पहले संगम-तीर्थ (प्रयाग) में गंगा-यमुना का संगम देख चुका हो, उसे जैसे संगम-रहित यमुना नहीं भाती, वैसे ही उर्वशी के बिना तुम मुझे आनंद नहीं देतीं।

चित्रलेखा ने भी ठीक उत्तर दिया। उसने कहा—निःसंदेह पहले बादलों की पंक्ति दिखाई देती है, बाद में बिजली।

क्षण भर में वहाँ उर्वशी भी प्रकट हो गई। राजा ने हाथ पकड़कर उसे आसन पर बिठा लिया।

इसी समय देवदूत ने आकर चित्रलेखा से कहा कि उर्वशी को जल्दी भेजो। भरत मुनि ने जो आठ रसों से आश्रित और ललित अभिनय-युक्त नाटक आपको सिखाया है, आज उसे देखने को देवराज और लोकपाल उतावले हो रहे हैं।

यह सुनकर उर्वशी को बहुत दुःख हुआ। महाराज से आज्ञा पाकर चित्रलेखा उर्वशी को साथ लेकर चली गई।

राजा को अब अपनी आँखें निरर्थक प्रतीत होने लगीं। मनोविनोद के लिए उन्होंने माणवक से पत्र माँगा। माणवक ने वह पत्र कहीं खो दिया था। इससे उसने तुरंत बात बदल दी। परंतु राजा ने फिर पत्र माँगा। माणवक ने चारों ओर देखकर कहा—हा! शोक! भोज-पत्र नहीं मिलता। मित्र! दिव्य भोज-पत्र निस्संदेह उर्वशी के साथ स्वर्ग को चला गया है।

राजा ने माणवक को इस असावधानी के लिए डाँटा और भोज-पत्र खोजने की आज्ञा दी।

इससे कुछ समय पहले काशिराज की पुत्री औशीनरी महारानी, दासियों-सहित, वहाँ आ चुकी थीं। निपुणिका द्वारा रहस्य जानकर उन्हें ठीक-ठीक वृत्तांत जानने की इच्छा थी। महाराज को माणवक के पास बैठे देखकर वे गुप्त रूप से इनकी बातें सुनने लगीं। इतने में हवा से उड़ती हुई कोई वस्तु उन्हें दिखाई दी। वह वस्तु उड़कर महारानी के पैरों से आ लगी। महारानी ने उसे उठाकर देखा तो भोज-पत्र पर कुछ अक्षर लिखे पाये। निपुणिका ने पत्र पढ़कर बताया कि यह तो उसी लोकापवाद (अर्थात् उर्वशी और महाराज के प्रेम) का पत्र है। दासी ने पत्र पढ़कर सुना दिया।

महारानी ने इस पत्र को साथ लेकर महाराज से मिलने का विचार किया। माणवक अब तक भोज-पत्र खोजने का व्यर्थ यत्न कर रहा था। महारानी ने वहाँ पहुँचकर वही पत्र महाराज के हाथ पर रख दिया। वहाँ अकस्मात् महारानी को आई देखकर राजा चकित हो गये और बोले—महारानी! आपका स्वागत हो!

क्रोध-भरी औशीनरी ने कहा—मेरा स्वागत कहाँ? अब तो मेरा दुरागमन हो गया!

राजा ने माणवक की ओर मुँह करके पूछा—मित्र! अब क्या उपाय करना चाहिए? उसने कहा—वही उपाय करो जो चोरी की वस्तु के साथ पकड़ा गया चोर करता है। राजा ने माणवक से कहा—मूर्ख! यह हँसी का समय नहीं है।

राजा ने महारानी से कहा—मैं इस भोज-पत्र को नहीं खोज रहा था। मैं तो मंत्रवाले एक और पत्र की खोज में था।

महारानी ने ताने के ढँग पर कहा—ठीक है, अपने सौभाग्य की वस्तु छिपानी ही चाहिए।

माणवक ने बात को हँसी में टालना चाहा। कहा—महारानी! महाराज के लिए भोजन शीघ्र बनवाइए, जिससे इनका पित्त शांत हो और ये स्वस्थ हो जायँ।

महारानी—निपुणिका! ब्राह्मण ने अपने मित्र को अच्छा धीरज दिया है।

माणवक—हाँ, देखिए, निस्संदेह महाराज को विचित्र भोजनों से धीरज हो गया है।

राजा—मूर्ख! तू व्यथ ही मुझे अपराधी बना रहा है!

महारानी—स्वामी! आपका कुछ अपराध नहीं। अपराधिनी तो मैं ही हूँ, जो देखी जाने के योग्य न होने पर भी आपके सामने खड़ी हूँ। मैं यहाँ से जाती हूँ।

इस प्रकार क्रोध प्रकट कर जब महारानी जाने लगीं, तब राजा ने कहा—महारानी! मैं अपराधी हूँ। प्रसन्न हूजिए। क्रोध छोड़िए। भला जब स्वामी क्रोधित हो तब सेवक निरपराध कैसे हो सकता है?

अब राजा ने महारानी के चरण छू लिए, परंतु रानी ने कुछ ध्यान न दिया। वे वर्षा-ऋतु में उमड़ी हुई नदी के समान क्रोध से भरी हुई चली गईं।

उनके चले जाने के बाद राजा ने पहले तो सोचा कि स्त्रियों के हृदयों पर प्रिय जनों का, सच्चे प्रेम के बिना, केवल मधुर वचनों से, कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु विचार ने फिर पलटा खाया। राजा ने अब कहा—चाहे मेरा मन उर्वशी में फँसा है फिर भी महारानी के लिए मेरा वैसा ही प्रेम है। चरण छूने पर भी उसने मेरी उपेक्षा की है। मैं भी अब अंतःपुर में न जाऊँगा।

—※ ३ ※—

स्वर्ग में 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नाटक के अभिनय में उर्वशी ने लक्ष्मी का रूप धारण किया और मेनका ने वारुणी का। मेनका ने उर्वशी से पूछा—लक्ष्मी! लोक-पाल और विष्णु आदि तीनों लोकों के पुरुष पधारे हैं। इनमें से तू किसको हृदय से चाहती है? उर्वशी के मुख से 'पुरुषोत्तम नारायण को' कहने के बदले 'पुरूरवा को' निकल पड़ा। इस पर रुष्ट होकर भरत मुनि ने उसे शाप दे दिया कि 'तूने मेरे उपदेश पर ध्यान नहीं दिया, इसलिए तेरा वास स्वर्ग में न होगा।' परंतु इंद्र को उर्वशी पर दया आ गई। उन्होंने कहा—उर्वशी! जिसके साथ तेरा अगाध प्रेम है, और जो युद्ध में मेरी सहायता किया करता है, उस राजर्षि का मुझे कुछ प्रत्युपकार करना है। इसलिए तू पुरूरवा के पास जाकर अपनी इच्छानुसार उस राजा की तब तक सेवा कर जब तक वह तुझसे उत्पन्न संतान का मुँह नहीं देख लेता। इस प्रकार मुनि का शाप भी आशीर्वाद में बदल गया।

इधर जब रानी औशीनरी राजा से रुष्ट होकर चली गईं तब उन्हें स्वयं पश्चात्ताप हुआ। अंत में उन्होंने विचार किया कि प्रिय-प्रसादन व्रत किया जाय। इसके लिए निपुणिका और लातव्य कंचुकी द्वारा महाराज को संदेश भेजा गया। सायंकाल का समय था। लातव्य कंचुकी ने महाराज को माणवक के साथ बैठे देखकर निवेदन किया—महाराज! महारानी प्रार्थना करती हैं कि चंद्र-देव मणि-प्रासाद से स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। इसलिए जब तक रोहिणी का संयोग चंद्रमा से होता है, तब तक महाराज मेरी प्रतीक्षा करें। राजा ने महारानी की बात मान ली।

कंचुकी के चले जाने पर राजा ने माणवक से पूछा—मित्र ! व्रत का वास्तविक कारण क्या है ?

माणवक—मेरा तो विचार है कि महारानी ने जो आपके पैर छूने की उपेक्षा की थी, इसी से उनके चित्त में पश्चात्ताप हुआ है और अब व्रत के बहाने वे आपसे मेल कर लेना चाहती हैं।

राजा ने समझा कि यही बात ठीक है।

फिर निर्दिष्ट समय से पहले ही माणवक को साथ लेकर राजा मणि-प्रासाद पर पहुँच गये। चंद्रोदय होने में अब देर नहीं थी। पूर्व दिशा का मुँह कुछ-कुछ लाल हो रहा था। देखते ही देखते चंद्रमा का उदय हो गया। माणवक ने प्रसन्न होकर कहा—अहा ! मित्र ! खाँड के लड्डू जैसे चंद्र-देव का उदय हो रहा है।

राजा ने मुस्कराकर कहा—पेटू मनुष्यों को सब जगह खाने की ही वस्तु दिखाई देती है।

चंद्रमा को देखकर रानी के आने में विलंब जानकर राजा ने फिर उर्वशी की चर्चा छेड़ दी। राजा का हृदय उसके लिए संतप्त हो रहा था। माणवक ने धीरज दिया। राजा को भी दाहिने अंग के फड़कने से कुछ धैर्य तो बँधता था, परंतु इससे हृदय की पीड़ा कम न होती थी।

इस समय शाप-ग्रस्त उर्वशी, चित्रलेखा के साथ आकाश-मार्ग से, रथ पर सवार होकर, पृथ्वी-लोक को आ रही थी। मार्ग में प्रश्नोत्तरों की झड़ी लगी रही। दोनों जब राजा के पास पहुँचीं तब वे, तिरस्करिणी विद्या से छिपकर, राजा की बातें सुनने लगीं।

राजा को उर्वशी की स्मृति सता रही थी। अपने लिए राजा का गहरा प्रेम देखकर उर्वशी ने अपने को धन्य समझा। उसने अपना मनोरथ पूरा हुआ माना। वह जल्दी से राजा के सामने

जा खड़ी हुई और राजा को तब भी उदासीन देखकर चकित हो गई। परंतु चित्रलेखा ने हँसकर स्मरण कराया कि तिरस्करिणी विद्या को हटाये बिना ही तू राजा के सामने जा खड़ी हुई है; इसी कारण राजा ने तुझे देखा ही न होगा।

इसी समय महारानी औशीनरी आती दिखाई पड़ीं। महारानी के साथ पूजा की सामग्री लिये हुए दासियाँ थीं। रानी ने चंद्रमा की ओर देखकर कहा—रोहिणी के संयोग से भगवान् चंद्रमा की शोभा अधिक बढ़ गई है।

दासी—निःसंदेह महारानी के साथ महाराज भी विशेष शोभित हो गये है।

तब सफ़ेद दुपट्टा ओढ़े हुए, मांगलिक आभूषण पहने, अलकों में पवित्र दूर्वा-दल लगाये, महारानी राजा के पास आईं।

राजा ने महारानी का हाथ पकड़कर बिठा लिया। महारानी ने कहा—नाथ! मुझे आपका पूजन करके एक विशेष व्रत पूरा करना है। इसलिए घड़ी भर यहाँ प्रतीक्षा करने का कष्ट स्वीकार कीजिए।

राजा—नहीं, कष्ट क्यों होगा? अनुग्रह कभी कष्ट नहीं हो सकता। भला, तुम्हारे इस व्रत का क्या नाम है?

महारानो ने निपुणिका की ओर देखा। निपुणिका ने कहा—महाराज! इस व्रत का नाम 'प्रिय-प्रसादन' है।

राजा—यदि ऐसा ही है तो, हे कल्याणी! इस कठोर व्रत से कमल-तंतु के समान कोमल अपने शरीर को तुम वृथा कष्ट दे रही हो। भला जो सेवक तुम्हें प्रसन्न करने के लिए स्वयं उतावला हो रहा है, उसे प्रसन्न करने के लिए तुम क्यों यत्न कर रही हो?

यह सुनकर उर्वशी ने चित्रलेखा से कहा—महाराज के हृदय में इस रानी के लिए बहुत सम्मान है।

चित्रलेखा—मूढ़ ! दूसरी स्त्रियों के साथ प्रेम रखनेवाले नागरिक अपनी स्त्रियों के प्रति बड़ा प्रेम दिखाते हैं, जिससे उन्हें संदेह न हो।

राजा का उत्तर सुनकर रानी ने कहा—महाराज ! यह इसी व्रत का प्रभाव है, जो आप ऐसा कहकर मेरा इतना मान कर रहे हैं।

इसके बाद रानी ने पूजा की सामग्री लेकर, राज-प्रासाद में आई हुई, चंद्रमा की किरणों की पूजा की और उपहार के लड्डू कंचुकी और माणवक को दिये। फिर राजा का पूजन किया और हाथ जोड़कर निवेदन किया—मैं रोहिणी और चंद्रमा दोनों देवताओं को साक्षी करके स्वामी को प्रसन्न करती हूँ। महाराज ! आज से लेकर आप जिस स्त्री की इच्छा करेंगे तथा जो स्त्री आपका समागम चाहेगी, उसके साथ मैं प्रीति का वर्ताव करूँगी।

उर्वशी इन शब्दों से रानी का अभिप्राय न समझ सकी। उससे चित्रलेखा ने कहा—सखी ! पतिव्रता महारानी ने तुम्हारे और राजा के समागम के लिए स्वीकृति दे दी है। अब तुम्हारे लिए कोई रुकावट नहीं रही।

रानी के वचन सुनकर माणवक ने महारानी के विषय में धीरे से कहा—लूले के सामने यदि कोई मरने के योग्य व्यक्ति भाग जाय तो वह कहता है कि 'जा, चला जा, धर्म होगा।' फिर महारानी से कहा—महारानी ! क्या पूज्य महाराज आपके प्रति उदासीन हैं ?

महारानी—मूर्ख ! मैं तो अपने सारे सुखों को न्यौछावर करके भी महाराज को सुखी करना चाहती हूँ। बस, इसी से तू हमारा आपस का प्रेम जान ले।

राजा ने भी कहा—देवी ! मुझे तुम चाहे किसी और स्त्री के हाथ सौंप दो, अथवा अपनी ही सेवा में रख लो। तुम समर्थ हो। मुझ पर तुम जैसी शंका करती हो, वैसा मैं नहीं हूँ।

महारानी—नाथ ! तुम वैसे रहो या न रहो ! मैंने तो प्रिय-प्रसादन व्रत कर लिया। अब जाती हूँ।

महारानी चली गईं। तब माणवक ने महाराज से कहा—महारानी ने आपको, असाध्य रोगी के समान, त्याग दिया है।

राजा फिर उर्वशी का स्मरण करने लगे। उन्होंने कहा—इस प्रासाद में उतरकर भय के कारण मंद-गति से चलती हुई उर्वशी को चतुर सखी बल-पूर्वक मेरे पास ले आवे। छिपी हुई वह अप्सरा पाजेबों का शब्द-मात्र ही मेरे कानों को सुना दे, अथवा पीछे से धीरे-धीरे आकर मेरी आँखों को कर-कमलों से मूँद दे।

उर्वशी ने तुरंत पीछे जाकर राजा की आँखें मूँद लीं। राजा को रोमांच हो आया, सारा शरीर पुलकित हो गया। तुरंत हाथ पकड़कर उर्वशी को अपने पास बिठा लिया। उर्वशी ने कहा—सखी ! देवी ने अपने महाराज को मुझे दे दिया है। इसलिए देवी की नाईं, मैं भी इनकी अर्धांगिनी हो गई हूँ।

राजा—यदि 'देवी ने दिया' इसलिए तुम मुझसे प्रेम करती हो तो इससे पहले किसकी अनुमति से तुमने मेरा मन हर लिया था ?

इस समय चित्रलेखा ने कहा—मित्र ! इसका उत्तर उर्वशी नहीं दे सकती। अब मेरी एक प्रार्थना है। वसंत-ऋतु के बाद ग्रीष्म-ऋतु में मुझे सूर्य भगवान् की सेवा करनी है। सो मुझे आज्ञा दीजिए। मेरी सखी के साथ आप ऐसा व्यवहार करें जिससे वह स्वर्ग जाने के लिए उतावली न हो।

फिर सखी उर्वशी को गले लगाकर चित्रलेखा बिदा हुई। राजा पुरूरवा और उर्वशी का मनोरथ पूरा हुआ।

—※ ४ ※—

चित्रलेखा को शोक में डूबी देखकर सहजन्या ने उसके दुःख का कारण पूछा। चित्रलेखा ने करुणा के साथ कहा—सखी! उर्वशी और महाराज पुरूरवा, राज का भार अपने मंत्रियों के ऊपर डालकर, कैलास-शिखर के पास गंधमादन वन में घूमने के लिए गये थे। वहाँ एक दिन मंदाकिनी के तट पर बालू के टीलों पर खेलती हुई विद्याधर-कन्या उदयवती को राजा पुरूरवा ने टकटकी लगाकर देखा। इससे मेरी सखी उर्वशी बिगड़ गई। उसने राजा का अनुनय-विनय भी स्वीकार न किया और क्रोधवश देवताओं के नियम को भूलकर उस कुमार-वन में चली गई, जहाँ स्त्रियों के लिए जाना मना है। प्रवेश करते ही वह उस वन में लता के रूप में बदल गई।

यह सुनकर सहजन्या को भी शोक हुआ; वह कहने लगी—भाग्य के विरुद्ध कौन चल सकता है? फिर क्या हुआ?

चित्रलेखा—राजा पुरूरवा भी उन्मत्त होकर उसी गंधमादन वन में उर्वशी को ढूँढ़ते हुए रात-दिन एक कर रहे हैं।

सहजन्या ने दोनों के समागम का कोई उपाय पूछा। चित्रलेखा ने कहा—इसका एक ही उपाय है। पार्वती के चरण-राग से उत्पन्न हुई संगम-मणि जो, फिर समागम कराने में समर्थ है।

सहजन्या—मेरे विचार में तो समागम का कोई उपाय शीघ्र ही जायगा। ऐसे महापुरुष चिरकाल तक दुःख नहीं भोगा करते।

इधर पुरूरवा की विचित्र दशा थी। व्याकुल पुरूरवा उर्वशी को इधर-उधर खोज रहे थे। उर्वशी के सिवा कुछ सूझता ही न था। सब वस्तुओं में उर्वशी के अंगों की समानता दिखाई देती थी।

आकाश में बादल देखकर राजा को भ्रम हुआ कि यह कोई राक्षस है जो उर्वशी को लिये जा रहा है। क्रोध से मिट्टी के ढेले उठाकर उसे मारने लगे, परंतु बाद में विदित हुआ कि यह कोई अभिमानी राक्षस नहीं, बल्कि वर्षा ऋतु का नया बादल है और यह राक्षस का चढ़ाया हुआ धनुष नहीं, वरंच इंद्रधनुष है, तथा यह बाणों की वर्षा नहीं, वरंच सोने की चमकती हुई रेखा के समान बादल की बिजली है।

बादलों को देखकर राजा ने फिर सोचा—मुनि कहते हैं कि 'समय राजा के वश में है।' इसलिए इस वर्षा-काल को ही क्यों न रोकूँ। अथवा जाने दो, इस समय बादल भी तो मेरी ही सेवा कर रहे हैं। बिजली के कारण रंगबिरंगा यह बादल मेरा छत्र है, निचुल पेड़ की मंजरियाँ मेरे चँवर हैं, वर्षा के आरंभ के कारण चतुर मोर स्तुति-गान द्वारा मेरे भाट और धारा-रूप से वर्षा करनेवाले बादल मुझे भेंट देनेवाले मेरे साहूकारों के समान हैं।

परंतु उर्वशी का पुनः स्मरण हो आने पर राजा फिर उसे खोजने लगे और एक स्थान देखकर प्रसन्न हुए। भ्रम-वश कहने लगे कि उर्वशी के ओठों पर होकर गिरने से लाल-रंग के आँसुओं की बूँदों से रँगी हरे रंग की यह चोली पड़ी है। राजा उसे उठाने लगे तो देखकर बोले—अहो ! यह तो बीरबहूटियों से भरी हरी घास है। हाय ! किस प्रकार प्रिय उर्वशी को ढूँढ़ूँ ?

इसके बाद राजा एक शिला पर चढ़ गये। वहाँ गर्दन उठाये हुए एक मोर बोल रहा था। उसे भी पूछा—हे मोर ! इस वन में घूमते हुए तुमने क्या हंस के समान गतिवाली मेरी कमल-नयनी उर्वशी को देखा है ?

मोर ने कुछ उत्तर तो दिया नहीं, बल्कि प्रसन्नता से नाचने लगा। राजा उसके हर्ष का कारण सोचने लगे। कुछ सोचकर बोले—हाँ, तुम्हारी प्रसन्नता का कारण मेरी समझ में आगया। उर्वशी का नाश हो जाने से तुम समझते हो कि तुम्हारे सुंदर पंख निरुपम हो गये हैं। नहीं तो फूलों से सजे और खुले हुए सुकेशी उर्वशी के केश-पाश के सामने तुम्हारे पंखों को कौन पूछता? खैर, और किसी से पूछता हूँ। यह दूसरे के दुःख पर प्रसन्न होनेवाला नीच है।

राजा अब सामने जामुन के पेड़ पर बैठी कोयल को देखकर कहने लगे—तू पक्षियों में चतुर मानी जाती है, इसलिए तुझसे पूछता हूँ। हे मधुर-भाषिणी! प्रेमी जन तुझे कामदेव की दूती कहते हैं। तू या तो मेरी उर्वशी को मेरे पास ले आ, अथवा मुझे ही जल्दी वहाँ ले चल।

परंतु कोयल बात सुने बिना ही जामुन खाती रही। राजा ने कहा—हाँ, ठीक है, लोग दूसरे के भारी दुःख को भी हलका समझते हैं। अच्छा, ऐसा करने पर भी मेरी उर्वशी के समान इस मधुर-भाषिणी पर क्या क्रोध करना?

राजा ने अब एक राजहंस से पूछा—मानसरोवर को जाने वाले हे जलपक्षि-राज! मेरा उद्धार करो। मैं उर्वशी का समाचार न मिलने से शोक-ग्रस्त हो रहा हूँ। सज्जन लोग परोपकार को स्वार्थ से श्रेष्ठ समझते हैं।

परंतु राजहंस ऊपर देखता रहा। इससे राजा ने समझा कि यह कहता है—मानसरोवर की ओर चित्त लगा रहने से मैंने तुम्हारी उर्वशी को देखा नहीं।

राजा अब अधिक खेद के कारण भारी उन्माद-वश हो राजहंस से फिर कहने लगे—यदि उसे तूने सरोवर पर नहीं

देखा तो, हे चोर! उसकी चाल तूने किस प्रकार चुरा ली? हे हंस! ला, मेरी उर्वशी मुझे दे दे। उर्वशी को तूने ही चुराया है। चोरी गई वस्तु का एक भाग जिसके पास देखा जाय, उसी से वह सारी वस्तु ली जाती है।

परंतु राजहंस उड़ गया। राजा ने समझा कि राजहंस यह सोचकर भयभीत हो उड़ गया है कि यह चोरों को दंड देनेवाला राजा है; कहीं मुझे भी दंड न देने लगे।

राजा अब और किसी से पूछने के लिए आगे बढ़े और एक स्थान पर चकवे को देखकर उसे पूछने लगे कि क्या तुमने मेरी उर्वशी को देखा है? राजा को ऐसा सुनाई पड़ा जैसे वह पूछता है 'तू कौन है?' राजा ने कहा कि मैं वह हूँ जिसके नाना और दादा सूर्य और चंद्रमा हैं और जिसे उर्वशी तथा पृथ्वी ने अपना स्वामी बनाया है। परंतु चकवे को चुप देखकर राजा ने उलहना दिया—हे चकवे! कमलिनी के पत्ते की ओट में बैठी हुई अपनी प्रिया चकवी को दूर समझकर तू निःसंदेह उतावला होकर रोता है, परंतु सचमुच अपनी प्राणप्रिया से बिछड़े हुए मुझसे तू क्यों नहीं बात करता? जैसी अपनी पीड़ा होती है, वैसी ही दूसरे की भी माननी चाहिए।

राजा यहाँ भी निराश होकर अपने दुर्भाग्य को कोसने लगे। फिर और कहीं एक भौंरे को देखकर बोले—हे भौंरे! उस मतवाली कमल-नयनी उर्वशी का तुझे कुछ पता है? कहीं उसे देखा तो नहीं? जान पड़ता है, उसके मुख की सुगंध तूने नहीं सूँघी, नहीं तो इस तुच्छ कमल को तू क्यों चाहता?

इसी समय पास ही एक गज-राज दिखाई पड़ा। राजा उससे पूछने लगे—तूने क्या पूर्ण-चंद्रमा की कांति को लजानेवाली

मेरी उर्वशी को देखा है ? तूने क्या चमेली के फूलों से सजी केशोंवाली किसी स्त्री को देखा है ?

राजा को उसके शब्द से कुछ धीरज मिला और प्रसन्न होकर बोले—हाँ, ठीक है। सहधर्मी होने से तेरे साथ मेरी बहुत प्रीति है। मैं राजाओं का राजा हूँ और तू हाथियों का राजा है। तू सदा मद की धारा बहाता है और मैं याचकों को सदा धन की विपुल राशि देता हूँ। स्त्री-रत्नों में उर्वशी मेरी प्रियतमा है और झुंड में यह हथिनी तेरी प्रियतमा है। इस प्रकार तुझमें और मुझमें बहुत समानता है, परंतु तुझे अपनी प्रिया के वियोग का अनुभव नहीं हुआ। यही एक अंतर है। इस कारण तू धन्य है। अच्छा, सुखी रह। हम जाते हैं।

राजा का चित्त अब सामने रमणीय सुरभि-कंदर नाम के पर्वत की ओर गया और शीघ्र ही विचार उठा कि अप्सराएँ इसको अधिक चाहती हैं, कहीं उर्वशी इसी पर्वत के पास न हो। इसलिए पर्वत से पूछने लगे—उर्वशी यहाँ तो नहीं रहती ? परंतु जब कुछ भी उत्तर न मिला तब यह समझा कि दूर होने के कारण यह मेरी बात नहीं सुन रहा। राजा ने जब पास जाकर पूछा तो अपने ही शब्द की गूँज सुनकर निराश हो गये।

राजा अब पास ही नदी-तट पर विश्राम करने लगे। परंतु वहाँ नदी के देखने से भी फिर उर्वशी का भ्रम हो आया और कहने लगे—यह क्रुद्ध उर्वशी ही नदी के रूप में बदल गई है जो शीघ्रता में ढीले वस्त्रों की तरह फेन को खींच रही है और मेरे बहुत-से अपराधों को चित्त में धारण करके टेढ़ी-मेढ़ी चाल से जा रही है। तरंगें इसकी भौंहें हैं और चंचल पक्षियों की पंक्ति इसकी करधनी।

परंतु वहाँ भी कुछ उत्तर न पाकर राजा ने सोचा कि

यह नदी ही है, उर्वशी नहीं; क्योंकि उर्वशी मुझे छोड़कर समुद्र के पीछे क्यों जाती ? अच्छा, श्रेष्ठ वस्तुएँ सुगमता से नहीं मिलतीं। अब फिर उस सुनयनी को ढूँढ़ता हूँ, जहाँ वह आँखों से ओझल हुई थी।

वहाँ जाकर राजा ने एक कदंब का पेड़ देखा। उन्हें स्मरण हो आया कि उर्वशी ने अपना केश-पाश सजाने के लिए इस पेड़ से अधखिले फूल तोड़े थे। राजा की दृष्टि वहाँ से दो चट्टानों के बीच एक बहुत गहरे लाल रंग के पदार्थ पर जा पड़ी, जिससे भ्रम हुआ कि यह सिंह से मारे हुए हाथी के मांस का टुकड़ा अथवा आग की चिंगारी तो नहीं है। परंतु फिर ध्यान आया कि अभी वर्षा हुई है, आग कैसे हो सकती है ! फिर निश्चय किया कि यह लाल रंग की मणि है, जिसे उठाने के लिए सूर्य मानों अपने किरण रूपी हाथों को फैलाये हुए हैं। राजा मणि को उठाने लगे तो ध्यान आया कि यह उर्वशी के केश-पाश के योग्य है। सो जब वही दुर्लभ है, तब इससे क्या लाभ ?

इसी समय राजा को सुनाई दिया—वत्स ! उठा लो, उठा लो ! महारानी पार्वती के चरण-कमलों से उत्पन्न हुई यह संगम-मणि है। इसे पहनने से वियोगी का मिलन होता है।

यह सुनकर राजा ने सोचा कि कौन मुझे ऐसे उपदेश कर रहा है। चारों ओर देखकर कहा—क्या कोई मृग-रूप-धारी मुनि मुझ पर कृपा कर रहा है ? राजा ने उसी का उपदेश मान कर मणि उठा ली और कहा—हे संगम-मणि ! यदि तू मुझे उर्वशी से मिला दे तो मैं तुझे अपने मुकुट में लगा लूँगा।

इसी समय राजा का ध्यान एक लता की ओर गया। राजा को अचंभा हुआ कि इस पुष्परहित लता पर मेरा प्रेम-सा क्यों हो रहा है; इसे छूने की इच्छा क्यों होती है।

आँखें मूँदकर लता को छूने से राजा का चित्त शांत हो गया, ऐसा ज्ञात हुआ मानों उर्वशी का स्पर्श हुआ हो, परंतु अब विश्वास न हुआ, क्योंकि कई बार पहले धोखे में आ चुके थे और अब धोखा खाकर अपने मन की पीड़ा को बढ़ाना नहीं चाहते थे। परंतु जब धीरे से आँखें खोलकर देखा तब उर्वशी दिखाई पड़ी। उर्वशी ने इस कष्ट के लिए राजा से क्षमा माँगी।

राजा—इतनी देर तक तुम अकेली कैसे रही ?

उर्वशी—महाराज ! सुनिए। कुमार कार्त्तिकेय ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर गंधमादन पर्वत के अकलुष नामवाले जल-प्राय प्रदेश में निवास किया था। उन्होंने यह मर्यादा बाँधी थी कि जो स्त्री इस स्थान पर आयेगी वह लता में बदल जायगी। पार्वती के चरण-राग से उत्पन्न मणि के विना वह स्त्री लता के रूप मुक्त न हो सकेगी। महान् शाप से मूढ़ होकर, देवता के नियम को भूलकर, और आपकी विनती की उपेक्षा कर मैं यहाँ चली आई और प्रवेश करते ही लता बन गई।

राजा ने वह संगम-मणि उर्वशी को दिखाई। उर्वशी ने मणि लेकर अपने सिर पर धारण कर ली और कहा—बहुत समय हो गया। प्रजा मुझे कोसती होगी। अब लौट चलो। इस नये बादल का विमान बना करके मुझे प्रतिष्ठानपुर ले चलो।

—* ५ *—

उर्वशी के साथ नंदनवन आदि अनेक देव-स्थानों में भ्रमण करके महाराज पुरूरवा बहुत दिनों में राजधानी को लौटे और फिर से अपना राज-काज करने लगे। अब संतान के अतिरिक्त राजा को और कोई चिन्ता न रही थी।

एक बार विशेष पर्व के दिन वे गंगा-यमुना के संगम पर,

रानियों के साथ, स्नान आदि करके तंबू में बैठे चंदन लगा रहे थे कि बाहर कोलाहल सुनाई पड़ा। एक दासी महाराज की उस महामूल्य संगम-मणि को रेशमी वस्त्र से ढँके हुए, तालपत्र में रक्खे, लिये जा रही थी कि एक गीध उसे मांस का टुकड़ा समझ झपटकर ले गया। यह सुनकर राजा, कंचुकी, वेधक (शिकारी) आदि कुछ पुरुष इकट्ठे हो गये। मणि-सहित सोने की जंजीर को चोंच में दबाये हुए वह गीध आकाश को भी रँग-सा रहा था। राजा ने उसे देखकर धनुष मँगवाया, परंतु इतने विलंब में वह पक्षी बहुत दूर निकल गया। आकाश में वह मणि ऐसी चमक रही थी जैसे रात के समय मंगल ग्रह चमकता है।

राजा ने कंचुकी द्वारा नगरवासियों को आज्ञा दी कि वे जाकर सायंकाल के समय पक्षियों के घोंसलों में उस पक्षी को ढूँढ़ें। राजा उस मणि को 'रत्न' समझकर नहीं चाहते थे; बल्कि उसका आदर तो इसलिए करते थे कि उससे ही उर्वशी के साथ पुनर्मिलन हुआ था।

कुछ समय बाद बाण-सहित मणि लेकर कंचुकी आ गया। उसने मणि देकर राजा से कहा—आपके क्रोध ने बाण बनकर उस वध्य पक्षी को मार गिराया है। यह धुली हुई मणि लीजिए।

राजा ने संदूक में मणि रखवाकर पूछा—यह बाण किसका है।

कंचुकी—बाण पर नाम तो लिखा है, परंतु मेरी दृष्टि काम नहीं करती!

राजा ने बाण लेकर अक्षर स्वयं पढ़े। लिखा था—शत्रुओं के प्राण लेनेवाला यह बाण, पुरूरवा के पुत्र, कुमार आयु का है, जो उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है और उत्तम धनुर्धारी है।

माणवक ने महाराज को, संतानवान् होने पर बधाई दी। राजा को विस्मय हुआ कि इसकी उत्पत्ति कब हुई।

माणवक—इसका कारण अप्सरा का दिव्य प्रभाव ही है।

इसी समय च्यवन ऋषि के आश्रम से कोई तापसी एक कुमार को लेकर आई। माणवक ने उसे देखते ही कह दिया—यह वही क्षत्रिय-कुमार है, जिसका नाम गीध के मारने वाले बाण पर लिखा है। इसकी आकृति आपके ही समान है।

उसे देखकर राजा भी आँखें तृप्त हो गईं। हृदय में प्रेम उमड़ आया।

तापसी ने सत्कार आदि ग्रहण कर चुकने पर राजा से कहा—सोम-वंश चिरकाल तक फले-फूले! जन्मते ही इस चिरंजीवी आयु कुमार को उर्वशी, किसी कारण, मुझे सौंप गई थी। इसके जाति-कर्म आदि संस्कार च्यवन ऋषि ने स्वयं किये हैं। अब यह वेद-शास्त्र पढ़ चुका है और धनुर्वेद में भी निपुण होगया है। आज यह राजकुमारों के साथ फूल, समिधा और कुश लाने गया था। वहाँ इसने वृक्ष की शाखा पर बैठे एक गीध को बाण से मार गिराया। यह कार्य आश्रम-नियम के विरुद्ध है। यह जान कर महात्मा च्यवन ने मुझे आज्ञा दी कि यह उर्वशी की धरोहर है; इसे सौंप आओ। इसलिए मैं उर्वशी को देखना चाहती हूँ।

राजा ने उर्वशी को बुला भेजा। कुमार आयु ने पिता के चरण छुए और पुरूरवा ने उसे उठाकर गले से लगा लिया।

पुरूरवा के पास बैठे हुए पुत्र आयु को उर्वशी ने दूर से ही देख लिया। पास आने पर कुमार ने माता को प्रणाम किया और उर्वशी ने तापसी को। तापसी ने राजा पुरूरवा के सामने उर्वशी को उसका पुत्र सौंप दिया और आज्ञा लेकर आश्रम को लौट गई।

राजा के सुख की सीमा न थी, किंतु उर्वशी कुछ स्मरण करके रोने लगी।

राजा ने विस्मित होकर पूछा—पुत्र-प्राप्ति के समय हर्ष के स्थान पर तुम्हें शोक क्यों हो रहा है ?

उर्वशी—महाराज ! पहले तो मैं पुत्र-दर्शन के आनंद से अपने आपको भूल गई थी; किंतु अब मुझे इंद्र के साथ की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया है ।

राजा—कौन सी प्रतिज्ञा ?

उर्वशी—महाराज ! अभिनय के समय आपकी चिंता में डूबी रहने के कारण मुझे गुरु (भरत) ने शाप दिया था । फिर इंद्र ने शाप की अवधि नियत कर दी थी ।

राजा—अवधि क्या है ?

उर्वशी—इंद्र ने कहा था कि "जब मेरे परम प्रिय मित्र महाराज पुरूरवा तेरे द्वारा उत्पन्न संतान का मुख देख लेंगे तब तू मेरे पास आ जाना ।" मैंने आपके वियोग से बचने के लिए, उत्पन्न होते ही, पुत्र को विद्याध्ययन के निमित्त च्यवन ऋषि के आश्रम में पूजनीय सत्यवती के हाथ सौंप दिया था । अब यह बालक पिता की सेवा करने योग्य हो गया है, यह सोचकर वे इसे यहाँ छोड़ गई हैं । बस, आपके साथ मेरे सहयोग की इतनी ही अवधि थी ।

यह सुनकर राजा को मूर्च्छा आ गई । सचेत होने पर कहने लगे—अहा ! दैव किसी के सुख को सहन नहीं करता । पुत्र-प्राप्ति से संतुष्ट मेरे लिए तुम्हारा वियोग वैसा ही है जैसा किसी पेड़ पर पहली वर्षा के बाद बिजली का गिरना । अब मैं राज्य नहीं कर सकता । तुम इंद्र की सेवा में जाओ । मैं भी तुम्हारे पुत्र आयु को राज्य देकर बन की शरण लेता हूँ ।

आयु—पिताजी ! बड़े-बड़े राजाओं के पालन करने योग्य पृथ्वी की रक्षा में मेरे जैसे बालक को नियुक्त करना उचित नहीं ।

राजा—पुत्र ! ऐसा मत कहो। सिंह का बच्चा भी बड़े-बड़े हाथियों का नाश कर देता है।

ऐसा कहकर राजा ने राज्याभिषेक की सामग्री लाने के लिए आज्ञा दी।

इस समय सहसा आकाश में बिजली चमकने लगी और नारद मुनि प्रकट होते दिखाई पड़े। धीरे-धीरे वे नीचे उतर कर राजा पुरूरवा के पास आये। राजा और उर्वशी ने उनकी यथोचित पूजा की। नारदजी ने आशीर्वाद दिया—तुम दोनों में कभी वियोग न हो।

राजा ने मन-ही-मन कहा कि क्या ऐसा हो सकता है ? फिर उनसे पधारने का कारण पूछा।

नारद—राजन् ! देवेंद्र ने अपने दिव्य प्रभाव द्वारा तुम्हारा बन जाने का संकल्प जानकर कहा है कि देवताओं और राक्षसों में घोर संग्राम होने वाला है। युद्ध में आप हमारे महान् सहायक हैं, इसलिए आप शस्त्र का त्याग न करें; उर्वशी जन्म-भर आपके साथ रहेगी।

उपस्थित जनों ने इंद्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। दुःख अब सुख में बदल गया। नारदजी ने राज्याभिषेक का कार्य स्वयं किया। नारदजी, और माता-पिता आदि को प्रणाम करके कुमार आयु, उर्वशी तथा पुरूरवा के साथ, बड़ी विमाता को प्रणाम करने चला। चारों ओर से पुष्प-वृष्टि होने लगी। नारदजी अपना कार्य पूर्ण कर गाते हुए चले गये।

शकुंतला

—※ १ ※—

प्राचीन समय में पुरु-वंश में दुष्यंत नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। वे एक दिन आखेट में मृग का पीछा करते हुए अधिक दूर निकल गये। कभी-कभी तो मृग इतनी दूर निकल जाता था कि सहज में दिखाई न देता था। एक स्थान पर दुष्यंत ने, उसे मारने के लिए, बाण चढ़ाया ही था कि एक ओर से किसी ने कहा—राजन्! इसे मत मारिए; यह आश्रम का मृग है।

फिर वहाँ तपस्वियों को सामने देखकर राजा ने रथ रुकवा लिया। तब एक तपस्वी ने, दो शिष्यों के साथ, वहाँ आकर कहा—राजन्! यह आश्रम का मृग मारने योग्य नहीं है। इस मृग के कोमल शरीर पर बाण मारना तो फूलों के ढेर पर आग रखना है। कहाँ आपका यह कठोर तीक्ष्ण बाण और कहाँ मृग के कोमल प्राण! अतएव कृपा कर बाण को उतार लीजिए। बाण तो दुखी पुरुषों की रक्षा के लिए बनाया गया है, न कि निरपराध को मारने के लिए।

दुष्यंत ने बाण उतार लिया। तपस्वी ने प्रसन्न होकर कहा—हे पुरु-वंश-प्रदीप! यह आपके योग्य ही है। आपके चक्रवर्ती और गुणी पुत्र उत्पन्न हो! हम समिधा लाने जा रहे हैं। सामने

ही, मालिनी नदी के तट पर, कुलपति कण्व का आश्रम है। यदि और कोई काम न हो तो वहाँ जाकर अतिथि-सत्कार ग्रहण कीजिए और तपस्वियों के निर्विघ्न यज्ञ आदि देखकर अपने बाहु-बल के प्रताप का अनुभव कीजिए।

दुष्यंत—क्या वहाँ कुलपति हैं?

तपस्वी— नहीं, अपनी कन्या शकुंतला को अतिथि-सत्कार की आज्ञा देकर वे, उसी के प्रतिकूल दैव की शांति के लिए, सोम-तीर्थ को गये हैं।

दुष्यंत—अच्छा, शकुंतला को ही देखता हूँ। वह मेरी भक्ति जानकर महर्षि से कहेगी।

अब तपस्वी लोग अनुमति लेकर अपने कार्य के लिए चले गये। दुष्यंत ने सारथि से आश्रम की ओर रथ हाँकने को कहा। कुछ और आगे बढ़कर राजा रथ से उतर पड़े। तपोवन में विनीत रूप से जाने के विचार से उन्होंने धनुष और आभूषण उतार दिये। सारथि को घोड़ों की पीठ ठंडी करने की आज्ञा देकर वे आश्रम-वासियों को देखने के लिए चले। अभी आश्रम-द्वार पर पहुँचे ही थे कि उनकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। इससे सोचने लगे कि यह तो आश्रम का शांत स्थान है, यहाँ इसका क्या फल होगा! अथवा दैव के द्वार सर्वत्र होते हैं।

इस समय राजा को दक्षिण की ओर, वृक्षों की वाटिका में, कुछ बातचीत सुनाई दी। किसी ने सखी को पुकारा था। राजा ने घूमकर देखा, वहाँ तपस्वियों की कन्याएँ पौधों को सींचने के लिए, अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार, जल से भरे घड़े लिये इधर ही आ रही हैं। उनके मधुर दर्शन का राजा पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे कहने लगे कि ऐसा रूप तो अंतःपुर में होना चाहिए। अब वे पेड़ों की छाया में खड़े होकर उन्हें देखने लगे।

सामने शकुंतला और अनसूया तथा प्रियंवदा नाम की उसकी दो सखियाँ जल सींचती आ रही थीं। अनसूया ने कहा—सखी शकुंतला ! मैं सोचती हूँ कि पिता काश्यप को आश्रम के ये वृक्ष तुमसे भी अधिक प्रिय हैं। तभी तो वे तुम्हें ऐसे काम में लगा गये हैं।

शकुंतला—केवल पिता जी की ही आज्ञा नहीं है; वरंच इन पर मेरा भी सहोदर का-सा प्रेम है।

ये शब्द सुनकर दुष्यंत सोचने लगे कि यह कण्व की कन्या कैसे हुई ? इस स्वभाव से मनोहर शरीरवाली को जिसने आश्रम-धर्म में नियुक्त कर रक्खा है वह अवश्य अविवेकी होगा। ऐसा करके वह ऋषि अवश्य नील-कमल की पंखड़ियों से शमी के दो टुकड़े करने का यत्न करता है।

राजा अब शकुंतला को पेड़ों की ओट से ही छिपकर देखने लगे। वल्कल-वस्त्र यद्यपि शकुंतला के योग्य न थे, तथापि उन्हें पहने हुए वह राजा को और भी सुदंर प्रतीत हुई। सेवार से घिरा कमल भी मनोहर दिखता है; चंद्रमा का कलंक भी उसकी कांति को बढ़ाता है; सुंदर आकृतिवालों के लिए कौन-सी वस्तु अलंकार नहीं हो जाती ?

इतने में शकुंतला आगे बढ़कर वकुल-वृक्ष को सींचने के लिए जा खड़ी हुई।

अनसूया ने शकुंतला से कहा—आम के वृक्ष से स्वयं लिपटनेवाली इस चमेली की लता को क्या तू भूल गई ? इसका वन-ज्योत्स्ना नाम तूने ही रक्खा है।

"तब तो मैं अपने आपको भी भूल जाऊँगी" इतना कहकर शकुंतला लता के पास गई और उसे देखकर बोली—सखी ! बड़े सुंदर समय में इनका मेल हुआ है।

शकुंतला इसे देखती हुई ठहरी रही। प्रियंवदा ने मुस्कराकर कहा—शकुंतला! क्या तू यह सोच रही है कि जैसे वन-ज्योत्स्ना ने योग्य वृक्ष को पाया है, वैसे मैं भी अपने योग्य वर को पाऊँ?

"यह तो तेरी ही इच्छा है" ऐसा कहकर शकुंतला ने जल का घड़ा वहाँ, वृक्ष और लता पर, लुढ़का दिया।

दुष्यंत अब सोचने लगे कि यह कन्या क्या कुलपति कण्व की किसी असवर्णा स्त्री से है! यदि नहीं, तो मेरा मन इसके लिए क्यों चंचल हो रहा है? उत्सुक राजा को ठीक-ठीक वृत्तांत जानने की इच्छा हुई।

इस समय जल की बूँदों से डरकर उड़ा हुआ एक भौंरा, लता को छोड़कर, शकुंतला के मुँह पर बैठ गया। बार-बार उड़ाने पर भी वह उड़ता न था। कभी आँखों के पास पहुँच जाता, कभी कानों के पास गूँजता और कभी होठों पर जा बैठता था। शकुंतला बहुत खिन्न होकर कहने लगी—यह ढीठ भौंरा नहीं हटता। सखियो! इस दुष्ट से मुझे बचाओ।

सखियों ने मुस्कराकर कहा—हम रक्षा करनेवाली कौन हैं? तू दुष्यंत को बुला; क्योंकि तपोवनों का रक्षक राजा होता है।

अपने को प्रकट करने के लिए राजा को यह अवसर उपयुक्त जान पड़ा। वे आगे बढ़ गये। राजा को देखकर सब विस्मित हो गईं। राजा ने पूछा—पौरव-राज के राज्य में तपस्वियों की कन्याओं से कौन धृष्टता करता है?

अनसूया—श्रीमान्! कोई विशेष विपत्ति नहीं है। हमारी यह प्रिय सखी भौंरे से दुखी हो रही है।

अब अनसूया ने राजा के अतिथि-सत्कार के लिए शकुंतला से जल और फल आदि लाने को कहा; परंतु राजा ने कहा—तुम्हारे मधुर वचनों से ही मेरा सत्कार हो गया।

प्रियंवदा ने तब उनसे सप्तपर्ण-वृक्ष की शीतल छाया में, चबूतरे पर, बैठकर विश्राम करने को कहा। राजा दुष्यंत ने तपस्वियों की कन्याओं को भी वहीं बिठा लिया।

राजा को देखकर शकुंतला के हृदय में तपोवन के विरुद्ध भाव उत्पन्न होने लगे। प्रियंवदा ने भी उन्हें कोई विशेष प्रतिभाशाली व्यक्ति समझा।

अनसूया ने पूछा—श्रीमान् किस राज-वंश के भूषण हैं और अधिक सुकुमार होकर भी तपोवन के परिश्रम में शरीर को क्यों थका रहे हैं ?

उत्तर सुनने के लिए शकुंतला का भी हृदय उत्सुक हुआ।

दुष्यंत अपना परिचय नहीं देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कहा—देवी ! मुझे पौरव-राज ने धर्माधिकार में नियुक्त किया है। मैं तपोवन में यह जानने के लिए आया हूँ कि यज्ञ आदि में कोई बाधा तो नहीं होती।

इस पर अनसूया ने कहा—हम धर्मचारी अब सनाथ हुए।

अब सखियों ने आपस में कहा—यदि आज यहाँ पिता होते तो जीवन-सर्वस्व से भी इस विशेष अतिथि को कृतार्थ करते।

यह सुनकर शकुंतला ने कृत्रिम क्रोध से कहा—हटो, तुम न जाने हृदय में क्या विचार कर ऐसा कह रही हो। मैं तुम्हारी बात नहीं सुनती।

अब राजा ने शकुंतला के विषय में पूछा—ऐसा प्रसिद्ध है कि भगवान् काश्यप सदा से तपस्या में संलग्न हैं, फिर यह तुम्हारी सखी उनकी कन्या कैसे हुई ?

अनसूया—सुनिये, कौशिक गोत्र के एक बड़े प्रतापी राजर्षि हुए हैं। एक बार उनके उग्र तप से शंकित होकर देवताओं ने, उनके तपोभंग के लिए, मेनका नाम की अप्सरा भेजी। उसी से

हमारी सखी की उत्पत्ति हुई है। इस परित्यक्त कन्या का पालन करने के कारण तात काश्यप इसके पिता हैं।

अब तो दुष्यंत को अपने मनोरथ के लिए अवकाश मिला। उन्होंने पूछा—यह मृगाक्षी विवाह तक ही तपस्या के व्रत का पालन करेगी अथवा जीवन-पर्यंत हरिणियों के साथ ही रहेगी?

प्रियंवदा—महाराज! यह कन्या धर्माचरण में भी पर-वश है। इसके पिता की इच्छा इसे योग्य वर को सौंपने की है।

दुष्यंत ने मन-ही-मन कहा कि तब तो यह दुर्लभ नहीं है। अब मनोरथ की पूर्ति में कोई विघ्न नहीं रहा। यह रत्न, जिसे अग्नि समझकर मेरा हृदय डर रहा था, मेरे स्पर्श करने योग्य है।

यह वार्तालाप सुनकर शकुंतला क्रुद्ध होकर जाने लगी। अनसूया के कारण पूछने पर शकुंतला ने कहा—मैं अनाप-शनाप बकनेवाली प्रियंवदा की बातें जाकर माता गौतमी से कहे देती हूँ।

अनसूया ने उसे रोककर कहा—विशेष अतिथि का सत्कार किये बिना ही तुम्हारा जाना उचित नहीं।

अब शकुंतला जाने लगी। राजा उसे पकड़ना चाहते थे परंतु ऐसा कर नहीं सकते थे। प्रियंवदा ने शकुंतला को रोक-कर कहा—तुम्हें जाना उचित नहीं।

शकुंतला—क्यों?

'तुम्हें मेरे दो पेड़ सींचने हैं। आओ, यह ऋण चुकाकर जाना" ऐसा कहकर प्रियंवदा ने शकुंतला को बलपूर्वक रोक लिया।

"यह तो पेड़ों के सींचने से थकी हुई देख पड़ती है, सो मैं इसका ऋण चुकाये देता हूँ।" ऐसा कहकर दुष्यंत ने अपनी अँगूठी उतार कर दे दी।

उस पर अंकित नाम पढ़कर दोनों सखियाँ विस्मित हो गईं।

राजा ने उनका भाव समझकर कहा—कुछ और मत सोचो। यह राजा का उपहार है।

प्रियंवदा--राजा का उपहार होने के कारण आपको यह अँगूठी देना उचित नहीं। यह तो आपके वचन से ही उऋण हो गई। फिर उसने कुछ हँसकर कहा—सखी शकुंतला! इस महानुभाव अथवा महाराज के अनुग्रह से तुम उऋण हो गई हो। अब तुम जा सकती हो।

परंतु शकुंतला का मन जाने को नहीं चाहता था। इसके उत्तर में, उसने मन-ही-मन कहा कि "जाऊँ तब जब मैं अपनी स्वामिनी होऊँ" और फिर स्पष्ट रूप से कहा—भेजनेवाली या रोकनेवाली तुम कौन होती हो?

राजा अब शकुंतला की ओर देखकर सोचने लगे कि जैसे मेरा मन इसकी ओर खिंचा है, वैसे ही क्या इसका मन भी मेरी ओर लगा होगा? राजा ने शकुंतला की चाल-ढाल से अनुमान किया—जान पड़ता है, मेरी प्राथना सफल होगी।

इतने में एक ओर से शब्द आया—हे तपस्वियो, तपोवन के जीवों के पास, उनकी रक्षा के लिए, जाओ। सुना है, मृगयाशील राजा दुष्यंत पास है। घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल, आश्रम के वृक्षों की शाखाओं पर सूखने के लिए डाले गये। गीले कपड़ों पर पड़ रही है। रथ को देखने से भयभीत हाथी तपोवन में प्रवेश कर रहा है। इसने मृगों के झुंड को तितर-बितर कर दिया है।

यह सुनकर सब स्तब्ध हो गये। राजा को नगरवासियों पर शोक हुआ, जिन्होंने तपोवन में आकर शांति भंग कर दी। कन्याएँ डरकर कुटी को जाने लगीं। राजा उन्हें कुटी में जाने को अनुमति देकर आश्रम में, विघ्न को रोकने के लिए, जाने लगे। सखियों ने उन्हें फिर दशन देने की प्रार्थना की।

चलते समय शकुंतला ने सखी से कहा—अनसूया ! मेरे पैर में नये कुश का काँटा चुभ गया है और वस्त्र कुरबक की शाखा में उलझ गया है। सो जब तक मैं इसे छुड़ाती हूँ, तब तक मेरी प्रतीक्षा करो।

अब शकुंतला, राजा की ओर देखती हुई, बहाने से विलंब करके, सखियों के साथ चली गई।

दुष्यंत को भी अब नगर की ओर जाने की इच्छा न रही। उसने अपने अनुचरों का डेरा, तपोवन के समीप, डलवाने का विचार किया।

—* २ *—

राजा का मित्र माढव्य मृगयाशील राजा से व्याकुल हो उठा। वह सोचने लगा कि दोपहर में गरमी के कारण विरली छायावाले पेड़ों के बीच घूमना पड़ता है। पहाड़ी नदियों का पत्तों के मिलने से कसैला जल पीना पड़ता है। ठीक भोजन भी नहीं मिलता। रात में नींद पूरी नहीं होती तभी, प्रातःकाल से पहले ही, मृगया में राजा के साथ जाने के लिए मुझे दासीपुत्र उठा देते हैं। फिर कोढ़ में खाज यह कि कल जब हम लोग पीछे रह गये थे तब महाराज ने मृग का पीछा करते हुए आश्रम में प्रवेश कर तपस्वी की कन्या शकुंतला को दुर्भाग्य से देख लिया। अब नगर की ओर जाने के लिए किसी प्रकार उनका मन ही नहीं करता। क्या करूँ ?

माढव्य इस प्रकार सोच रहा था कि शकुंतला की चिंता करते हुए राजा दुष्यंत, धनुर्धारिणी यवन-स्त्रियों के साथ, वहाँ आ गये।

माढव्य ने राजा से कहा—मित्र ! मेरा हाथ नहीं उठता। सो शब्दों से ही तुम्हारा स्वागत करता हूँ; जय हो।

राजा—अरधंग कब से हुआ ?

माढव्य—स्वयं ही तो आँखें दुखाकर अब आँसुओं का कारण पूछते हो।

राजा ने स्पष्ट रूप से सब वृत्तांत कहने के लिए कहा। माढव्य कहने लगा—इस प्रकार राजकाज छोड़कर ऐसे भयंकर और निर्जन प्रदेश में आखेट की वृत्ति से तुम रहा करोगे। मैं सच कहता हूँ कि प्रतिदिन हिंसक पशुओं का पीछा करते-करते मेरे अंग बस में नहीं रहे। सो मुझ पर कृपा करो। एक दिन तो विश्राम कर लेने दो।

दुष्यंत ने सोचा कि यह तो ऐसा कहता है। मेरा भी चित्त काश्यप की कन्या का स्मरण कर आखेट से हट ही गया है। इसलिए माढव्य से बोले—और क्या? अपने मित्र के वाक्य टाले नहीं जा सकते। लो, मैं आखेट छोड़कर ठहरा जाता हूँ।

माढव्य प्रसन्न होगया।

राजा—मित्र! ठहरो, मुझे कुछ और कहना है। तनिक विश्राम कर लो, मेरे एक सरल काम में तुम्हें सहायक होना होगा।

माढव्य—क्या लड्डू खाने में? तब तो मुझ पर तुम्हारी बड़ी कृपा हुई।

राजा—जो कहना है, अभी कहता हूँ।

राजा ने सेनापति को बुलाकर कहा—मृगया के विरोधी माढव्य ने मेरा उत्साह मंद कर दिया है।

सेनापति—माढव्य तो ऐसे ही बका करता है। मृगया से शरीर को कई लाभ होते हैं। चर्बी कम हो जाने से पेट हलका हो जाता है और शरीर हर काम के योग्य बन जाता है। जंतुओं के भी भय और क्रोध-भरा विकार-युक्त चित्त देखने में आते हैं। धनुर्धरों की निपुणता यह है कि भागते हुओं पर उनके बाण सफल होते

हैं। मृगया को लोग बिना कारण ही बुरा कहते हैं। ऐसा मनो-विनोद और कहाँ मिल सकता है ?

परंतु राजा ने तपोवन निकट होने के कारण मृगया बंद करना ही उचित समझा। उन्होंने सेनापति को आज्ञा दी कि आगे गये हुए बन में घेरा डालनेवालों को वापिस बुला लो और सैनिकों को तपोवन में विघ्न डालने से रोक दो। आज्ञा-पालन के लिए सेनापति चला गया।

अब दुष्यंत और माढव्य पेड़ की छाया में, शिला-तल पर बैठ गये। दुष्यंत ने शकुंतला का प्रसंग छेड़ा। उन्होंने मित्र से कहा—माढव्य ! यदि तुमने यह दर्शनीय पदार्थ नहीं देखा तो तुम्हें आँखों का फल नहीं मिला।

माढव्य—तुम तो मेरे सामने ही रहते हो।

दुष्यंत—अपने को सभी सुंदर कहते हैं। मैं तो तुमसे आश्रम के रत्न स्वरूप शकुंतला के विषय में कहता हूँ।

माढव्य ने सोचा कि मैं राजा को इस बात का अवसर न दूँगा। इसलिए वह कहने लगा—मित्र ! क्या एक तपस्वी की कन्या तुम्हारी इच्छा के योग्य है ?

दुष्यंत—मित्र ! त्याज्य वस्तु पर पौरवों का मन नहीं जाता। सुना है वह मुनि-कन्या अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुई है। माता से छोड़ दी जाने पर वह मुनि को मिली है, मानों चमेली का फूल, टूटकर, आक पर गिरा हो।

माढव्य ने हँसकर कहा—जैसे किसी की अभिलाषा खजूरों से हटकर इमली में लगी हो, वैसे ही स्त्री-रत्नों का आनंद लेते हुए यह तुम्हारी इच्छा है।

दुष्यंत—तुमने उसे देखा नहीं, इसी से ऐसा कहते हो। वह तो विधाता द्वारा रची गई, रूप-लावण्य की, विलक्षण सजीव मूर्ति है।

दुष्यंत से माढव्य ने अब उसे शीघ्र पाने को इसलिए कहा कि कहीं वह, इंगुदी के तेल से चिकने सिरवाले, किसी तपस्वी के हाथ न पड़ जाय। परंतु दुष्यंत ने बताया कि वह पर-वश है, उसका पिता यहाँ नहीं है।

माढव्य—आपके लिए उसकी अनुरागभरी दृष्टि कैसी है?

दुष्यंत—तपस्वी की कन्या चाहे स्वभाव से ही लज्जाशील होती है, तब भी उसने मुस्कराकर मेरी ओर देखा था। फिर उसके लज्जाशील होने पर भी, चलते समय उसका भाव प्रकट हो गया। कुछ पग ही चलकर, कुश के अंकुर से पैर बिंधने के बहाने, वह सूक्ष्मांगी ठहर गई और पेड़ों की शाखाओं में उलझे वल्कल-वस्त्र को सुलझाती हुई मेरी ओर मुख मोड़ खड़ी रही।

माढव्य—मित्र! तब तो अपने लिए खाद्य-सामग्री और इकट्ठी कर लो। यह तपोवन उपवन दिखाई देता है।

दोनों में इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि दो ऋषि-कुमारों ने आकर निवेदन किया—महाराज! आश्रमवासी आपसे प्रार्थना करते हैं कि भगवान् महर्षि कण्व के न होने से राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न डालते हैं। सो आप कुछ दिन, सारथि-सहित, इस आश्रम को सनाथ करें।

दुष्यंत ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। माढव्य ने धीरे से राजा से कहा—अब गलहस्त तुम्हारे अनुकूल है।

राजा ने मुस्कराकर द्वारपाल रैवतक को आदेश दिया—मेरी ओर से सारथि से कहो कि रथ और धनुष-बाण ले आये।

दोनों ऋषि-कुमार प्रसन्न हो गये। राजा ने उनसे कहा—आप लोग चलें, मैं भी आपके पीछे-पीछे आता हूँ।

रथ तैयार हो गया। परंतु इसी समय राज-माता की आज्ञा लेकर नगर से एक दूत आ गया। उसने निवेदन किया—

महाराज ! माता ने आज्ञा दी है कि आज से चौथे दिन पुत्र-पिंड पालन नाम का व्रत होगा। उस समय तुम अवश्य आकर हमें प्रसन्न करो।

दुष्यंत—इधर तपस्वियों का कार्य उधर बड़ों की आज्ञा ! दोनों ही काम टाले नहीं जा सकते। अब क्या करना चाहिए ?

माढव्य—त्रिशंकु के समान बीच में रहो।

फिर कुछ विचारकर राजा ने कहा—मित्र माढव्य ! माता जी तुम्हें पुत्र के समान मानती हैं। सो तुम्हीं यहाँ से लौटकर, माता के पुत्रोचित कृत्य का अनुष्ठान करो। मेरी ओर से निवेदन कर देना कि मैं तपस्वियों के काम में लगा हूँ।

माढव्य ने भी यह स्वीकार कर लिया। परंतु दुष्यंत को तुरंत ही एक और विचार आया। उन्होंने सोचा कि यह चंचल है। जाकर कहीं हमारे प्रेम का वृत्तांत अंतःपुर में न कह दे। इसलिए उससे कह दिया—मित्र ! मैं ऋषियों के गौरव से आश्रम ठहरा हुआ हूँ। तपस्वी की कन्या पर मेरा प्रेम तिल-भर भी नहीं। कहाँ मैं और कहाँ वह प्रेम-व्यवहार से अनभिज्ञ, मृगों के साथ पली हुई, कन्या ! मैंने हँसी में जो अनाप-शनाप कहा है, उसे सच मत समझ लेना।

माढव्य ने भी "अच्छा" कहकर राजा का कहना मान लिया।

—* ३ *—

महानुभाव राजा दुष्यंत के प्रवेश-मात्र से ऋषियों के सब धर्म-कार्य निर्विघ्न हो गये। उधर दुष्यंत के लिए शकुंतला चिंतित रहने लगी ! उसे संतप्त-हृदय जानकर सखियाँ उसके लिए उशीर का लेप और डंडी-सहित कमल-पत्र ले आईं ! माता गौतमी के हाथ एक तपस्वी ने शांति-जल भी भेजने को कहा।

राजा दुष्यंत की भी ऐसी ही बुरी दशा हो रही थी। वे सोचने लगे कि अब यज्ञ का काम पूरा हो जाने पर, तपस्वियों से आज्ञा लेकर, मनोविनोद करूँ। उन्हें शकुंतला के दर्शन बिना कुछ भी अच्छा न लगता था। उसे ढूँढ़ने का विचारकर उन्होंने अनुमान किया कि शकुंतला, दोपहर के समय, मालिनी नदी के तट पर लता-कुंज में गई होगी।

उधर जाते हुए राजा जब बेंतों से घिरे लता-कुंज के पास पहुँचे तब पद-चिह्न की नई पंक्ति दिखाई दी। वहाँ झाँककर देखा तो नेत्रों को शांति मिल गई। शकुंतला फूलों से ढके हुए शिलातल पर लेटी थी। दोनों सखियाँ हवा कर रही थीं।

दुष्यंत वहाँ खड़े होकर उनका वार्तालाप सुनने लगे। शकुंतला उस समय बहुत व्याकुल-सी दिखाई दी। दुष्यंत सोचने लगे कि यह गरमी का दोष है अथवा वही है जो मेरे मन में है।

उधर दोनों सखियाँ भी शकुंतला की अवस्था पर चिंतित थीं। प्रियंवदा ने धीरे से अनसूया से कहा—उस राजर्षि के प्रथम दर्शन से लेकर शकुंतला उत्सुक-सी है। कदाचित् इसका यह रोग उसी कारण से हो।

अनसूया ने धीरे से कहा—मेरे हृदय में भी ऐसी ही शंका है। अच्छा, इससे पूछती हूँ।

दोनों सखियों के आग्रह करने पर शकुंतला ने कहा—सखी! जब से वह तपोवन का रक्षक राजर्षि मुझे दिखाई पड़ा है (नीचा मुँह करके) तब से मन में उसके लिए अभिलाषा होने के कारण मेरी यह अवस्था हो गई है।

यह सुनकर दुष्यंत प्रसन्न हो गये और कहने लगे—जो सुनने योग्य था वह सुन लिया।

शकुंतला ने फिर कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो ऐसा करो कि

में उस राजर्षि की दया का पात्र हो जाऊँ। नहीं तो मुझे तिलांजलि दे दो।

अब दुष्यंत का सारा संदेह जाता रहा।

शकुंतला की बात सुनकर प्रियंवदा ने धीरे से कहा—अनसूया! इसकी प्रेम-पीड़ा बहुत बढ़ गई है। यह विलंब करने में असमर्थ है। यह जिस पर मोहित है, वह पुरु-वंश का भूषण है; इसलिए इसकी अभिलाषा अभिनंदन के योग्य है।

अनसूया ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए कहा—ऐसा कोई उपाय हो जिसके द्वारा हम, गुप्त रूप से, प्रिय सखी का मनोरथ सिद्ध कर दें।

पियंवदा—वह राजर्षि, प्रेम-भरी दृष्टि से अभिलाषा सूचित करता हुआ, आजकल जागने से दुबला दिखता है। उसके लिए एक प्रीति-पत्र लिखवाओ। मैं देवता के प्रसाद के बहाने उसे, पुष्पों में छिपाकर, राजा के हाथ में पहुँचा दूँगी।

अनसूया को यह उपाय ठीक जँचा।

उनके कहने से शकुंतला पत्र लिखने को सहमत हो गई। प्रियंवदा ने उससे कहा—तू अपने विषय में ललित पद्य की रचना कर।

परंतु शकुंतला को और भय हुआ। वह कहने लगी—अवज्ञा के विचार से मेरा हृदय काँपने लगा है।

शकुंतला का यह वचन सुनकर दुष्यंत ने मन ही मन कहा—तू जिससे अवज्ञा की शंका करती है, वह तो तेरे ही लिए उतावला खड़ा है।

सखियों ने भी शकुंतला के वचन सुनकर कहा—हे अपने गुणों की निंदा करनेवाली सखी! शरीर को शांति देनेवाली, शरद्-चंद्र की चाँदनी को वस्त्र से कौन हटाता है?

शकुंतला ने सखियों का कहना मान लिया। वह लिखने के लिए कुछ सोचने लगी। कुछ देर सोचकर शकुंतला ने कहा—सखी ! पद्य तो मैं ने सोच लिया; परंतु लेख-सामग्री पास नहीं है।

सखियों ने उससे शुकोदर के समान सुंदर कमल-पत्र पर नखों द्वारा लिखने को कहा। शकुंतला ने पत्र लिखकर सखियों को पढ़कर सुनाया—

तो मन की जानत नहीं अहो मात बे-पीर।
पै मो मन को करत नित मनमथ अधिक अधीर ॥

इसी समय दुष्यंत ने सहसा प्रकट होकर कहा—

केवल तोहिँ तपावही मदन अहो सुकुमारि !
भस्म करत पै मो हियो तू चित्त देख विचारि ॥

राजा को देखकर सब प्रसन्न हो गईं। उन्होंने उनका स्वागत किया। अनसूया ने राजा से शकुंतला के पास उसी शिला पर विराजने को कहा। राजा वहीं बैठ गये। शकुंतला लजा गई।

प्रियंवदा ने दुष्यंत से कहा—यद्यपि आप दोनों का परस्पर अनुराग प्रत्यक्ष है, तथापि सखी का स्नेह मुझे यह कहने को विवश करता है कि हमारी सखी की यह दशा आपके ही कारण हुई है। इसलिए अनुग्रह कर आपको इसके जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

दुष्यंत—मेरी ओर से भी यही प्रार्थना है।

शकुंतला—सखी प्रियंवदा ! अंतःपुर के लिए उत्सुक राजा से ऐसा अनुरोध क्यों करती हो ?

दुष्यंत—हे मेरे हृदय में बसनेवाली ! मैं तो तुम्हारे ही वश में हूँ।

अनसूया—राजन् ! हमने सुना है कि राजाओं के अनेक

स्त्रियाँ होती हैं। अतः हमारी सखी का इस प्रकार निर्वाह करना, जिसमें इसे स्वजनों का शोक न हो।

दुष्यंत—मैं अधिक क्या हूँ ? अनेक स्त्रियाँ होने पर भी मेरे लिए प्रतिष्ठा की पात्री दो ही होंगी—एक तो सागर-मेखला पृथिवी और दूसरी तुम्हारी प्रिय सखी।

यह सुनकर दोनों सखियाँ निश्चिंत होगई। प्रियंवदा ने अब एक बहाना किया। "मृग-शावक अपनी माता को खोज रहा है; चलो, उसे माता से मिला दें।" ऐसा कहकर दोनों यहाँ से चली गईं।

शकुंतला कहती ही रही कि सखियो ! मैं असहाय रह गई हूँ, तुममें से एक तो यहाँ रहे; परंतु दोनों ने मुस्कराकर कहा—पृथ्वी के रक्षक राजा तो तुम्हारे पास ही हैं।

सखियों को जाते देख शकुंतला भी जाने को उठी, किंतु राजा ने उसे बलपूर्वक लौटा लिया।

शकुंतला—पुरुराज ! विनय की रक्षा कीजिए। प्रेम-विह्वल होने पर भी मैं अपनी स्वामिनी नहीं हूँ।

दुष्यंत—भीरु ! यह जानकर कि धर्मज्ञ भगवान् कुलपति दोष न देंगे, तुम गुरुजनों का भय मत करो। सुना है कि राजर्षियों की अनेक कन्याओं का, जिनका गंधर्व-विवाह हुआ है, उनके माता-पिता उनका अभिनंदन कर चुके हैं।

शकुंतला—मुझे छोड़ दीजिए। सखियों से अनुमति ले लूँ।

राजा—अच्छा, छोड़ दूँगा।

इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि बाहर से यह सुनाई दिया—चकवी ! सहचर से विदा माँग ले, रात आ गई।

शकुंतला ने इन शब्दों से सखी का अभिप्राय समझ लिया। वह राजा से कहने लगी—मेरे शरीर का वृत्तांत जानने के

के लिए माता गौतमी निःसंदेह इधर आ रही हैं। आप पेड़ों की ओट में हो जायँ

राजा ने ऐसा ही किया। इतने में हाथ में कमंडलु लिये गौतमी और दोनों सखियाँ वहाँ आ गईं। गौतमी ने शकुंतला से पूछा—बेटी! क्या तुम्हारे अंगों का ताप कम हो गया?

शकुंतला—माता! अब मुझे शांति है।

गौतमी ने अब कुश से शकुंतला पर शांति-जल छिड़क दिया और उससे कुटी में चलने को कहा।

शकुंतला उस समय जाना तो नहीं चाहती थी, परंतु विवश होकर, संतप्त हृदय से, अपनी सखियों के साथ चली गई। चलते समय उसने लता-कुंज को पुकारकर कहा—हे संताप के हरनेवाले! फिर भी दर्शन के लिए मैं तुमसे आज्ञा लेती हूँ।

दुष्यंत अब गहरी साँस लेते हुए पहले स्थान पर खड़े हो गये। वे सोचने लगे कि अब कहाँ जाऊँ? अथवा यहीं लता-कुंज में मुहूर्त्त-भर ठहर जाता हूँ।

परंतु एक ओर से शब्द हुआ कि सायंकाल के सवन-कर्म में ऋषियों के प्रवृत्त होने पर वेदी को राक्षसों ने चारों ओर से घेर लिया है।—यह सुनकर तपस्वियों का भय दूर करने के लिए दुष्यंत भी चले गये।

—※ ४ ※—

राजा दुष्यंत के आश्रम से चले जाने के बाद अनसूया और प्रियंवदा फूल चुन रही थीं। अनसूया ने कहा—सखी प्रियंवदा! गांधर्व-विवाह की विधि से कल्याण को प्राप्त हुई शकुंतला को सुयोग्य पति मिल जाने से मेरा हृदय शांत हो गया है। तब भी इतनी चिंता अवश्य है कि आज ऋषियों से विदा होकर वह

राजर्षि जब अपने अंतःपुर में पहुँचेगा तब यहाँ के वृत्तांत को स्मरण रक्खेगा या नहीं।

प्रियंवदा—ऐसी विशेष आकृतियाँ गुण की विरोधी नहीं होतीं। किंतु अब इस वृत्तांत को सुनकर पिताजी क्या कहेंगे ?

अनसूया—मैं तो समझती हूँ कि उनकी अनुमति मिल जायगी, क्योंकि सिद्धांत यही है कि "गुणवान् को कन्या दी जानी चाहिए।" यदि दैव ही उस संकल्प को पूरा कर दे तो गुरुजन सहज ही कृतार्थ हो जाते हैं।

फूल चुनती हुई ये दोनों इस प्रकार बातचीत कर रही थीं कि सहसा सुनाई पड़ा—अरे ! यह मैं हूँ।

अनसूया—सखी ! यह किसी अतिथि का-सा शब्द है।

प्रियंवदा—शकुंतला कुटी के पास है सही, परंतु आज उसका चित्त ठिकाने नहीं है।

इसलिए वे दोनों कुटी की ओर चल पड़ीं। परंतु इसी समय फिर सुनाई पड़ा—"अरी अतिथि का निरादर करनेवाली ! अनन्य मन से जिसका चिंतन करती हुई तू मुझ तपस्वी का स्वागत नहीं करती वह, स्मरण कराने पर भी, तुझे वैसे ही स्मरण नहीं करेगा जैसे उन्मत्त पुरुष पहले कहे हुए अपने प्रलाप के वाक्यों को स्मरण नहीं कर सकता।"

यह सुनकर प्रियंवदा ने कहा—हाय ! अनर्थ हो गया। किसी का सत्कार न करके शून्य-हृदय शकुंतला ने अपराध किया है।

आगे बढ़कर देखा तो शाप देकर महर्षि दुर्वासा शीघ्रता से जा रहे थे। प्रियंवदा, उनके सत्कार के लिए, अर्घ्य आदि लेने चली गई। अनसूया ने आगे बढ़कर उनसे प्रार्थना की। उसके अधिक अनुनय-विनय करने पर महर्षि दुर्वासा कुछ शांत हुए।

अनसूया ने आकर कहा—सखी ! उन्हें कुछ शांत तो किया है, परंतु वे लौटे नहीं। वे यह कहते चले गये कि "मेरा वचन मिथ्या नहीं होता; किंतु अभिज्ञान (निशानी) के देखने से शाप हट जायगा।"

प्रियंवदा—अच्छा, धीरज के लिए यही ठीक है। उस राजर्षि ने चलते समय अपने नाम से अंकित अँगूठी स्मृति के लिए पहना दी थी। उससे शकुंतला का काम चल जायगा।

प्रियंवदा और अनसूया ने शकुंतला को इस शाप की सूचना देना उचित न समझा।

प्रियंवदा—चमेली को गरम जल से सींचने का साहस कौन कर सकता है ?

कुछ दिनों के बाद काश्यप मुनि आश्रम में लौट आये। अनसूया सोचने लगी कि क्या दुर्वासा के शाप से ही इतना विलंब हो रहा है ? अन्यथा उस राजर्षि ने इतना धीरज देकर भी अब तक पत्र क्यों नहीं भेजा ? सखी दोष की भागी होगी, इसलिए प्रवास से लौटे हुए पिता कण्व से—दुष्यंत से विवाही गई—गर्भवती शकुंतला का वृत्तांत कहने में असमर्थ हूँ। अब क्या करना चाहिए ?

अनसूया इस प्रकार चिंतित थी कि प्रसन्न-वदन प्रियंवदा वहाँ आ गई। वह कहने लगी—सखी ! जल्दी करो। पिता कण्व ने आज शकुंतला को तपस्वियों के साथ, दुष्यंत के पास भेजने के लिए कहा है।

अनसूया—पिता ने यह वृत्तांत कैसे जाना ?

प्रियंवदा—जब वे यज्ञ-स्थान के पास पहुँचे तब आकाश-वाणी हुई कि शकुंतला दुष्यंत द्वारा गर्भवती है।

"आज ही शकुंतला भेजी जायगी" यह शुभ समाचार

सुनकर अनसूया प्रसन्न तो हुई, किंतु साथ ही सखी की विदाई के कारण उसके दुःख की मात्रा भी कम न थी। अब दोनों सखियाँ, मंगल-द्रव्य इकठ्ठे कर शकुंतला के पास गईं।

इसी समय महर्षि कण्व का शब्द सुनाई दिया। वे गौतमी से कह रहे थे कि शार्गरव और शारद्वत (शिष्यों) से शकुंतला को पहुँचा आने के लिए कह दो।

प्रियंवदा और अनसूया ने देखा कि, सूर्य का उदय होते ही शकुंतला स्नान किये बैठी है और स्वस्ति-वाचन करनेवाले तपस्वी, उसके कल्याण के लिए, आशीर्वाद दे रहे हैं।

दोनों सखियाँ जाकर शकुंतला का शृंगार करने लगीं।

"सखियों द्वारा किया हुआ यह शृंगार अब मुझे दुर्लभ हो जायगा" इस विचार से शकुंतला की आँखों में आँसू भर आये।

इस शुभ अवसर पर रोने से उसे सखियों ने रोका।

महर्षि कण्व के तपोबल द्वारा पेड़ों से स्वयं प्राप्त रेशमी वस्त्र तथा आभूषण शकुंतला को पहनाये गये।

नित्य-कर्म से निपटकर महर्षि कण्व भी शकुंतला के पास आ गये। शकुंतला आज पति-गृह को जायगी, यह सोचकर उनका हृदय दुखी हो रहा था। शकुंतला की बिदाई के कारण उनका हृदय व्याकुल था। आँसुओं को रोकने से गला भारी हो रहा था। चिंता के कारण इंद्रियाँ जड़ हो रही थीं। उन्हें आश्चर्य था कि जब मुझ वनवासी को स्नेह से इतनी वियोग-पीड़ा हो रही है, तो अपनी कन्याओं के पहले वियोग से पीड़ित गृहस्थों का क्या कहना?

शकुंतला ने लजाते हुए उठकर उन्हें प्रणाम किया। कण्व ने आशीर्वाद दिया—पुत्री! ययाति को शर्मिष्ठा के समान तू

स्वामी को प्रिय हो। तेरे वैसा ही चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न हो जैसा शर्मिष्ठा के पुरु उत्पन्न हुआ था।

महर्षि कण्व ने उसे आहुति दी हुई, आग की प्रदक्षिणा करने को कहा। सब ने प्रदक्षिणा की। तब महर्षि कण्व ने शार्गरव आदि अपने दो शिष्यों को बुलाकर शकुंतला को मार्ग दिखाने का आदेश दिया।

शार्गरव ने शकुंतला को मार्ग दिखाया। सब चल पड़े। तब कण्व ने तपोवन के पेड़ों को पुकारकर कहा—हे तपोवन के पेड़ो! तुम्हें सींचे विना जो जल नहीं पीती थी, आभूषणों की प्रेमी होने पर भी—तुम्हारे प्रति स्नेह से—जो तुम्हारी कोंपलें नहीं तोड़ती थी और तुम्हारे पहली बार खिलने के समय जो प्रसन्न होती थी, वही शकुंतला आज पति-गृह को जा रही है। तुम सब इसे आज्ञा दो।

इसी समय कोयल बोल उठी। महर्षि कण्व ने समझा, पेड़, कोयल के मधुर वचन द्वारा, शकुंतला को पति-गृह जाने की आज्ञा दे रहे हैं।

इसके बाद फिर शब्द सुनाई दिया—"तुम्हारे मार्ग कल्याणमय हों।" यह वन-देवियों का आशीर्वाद था। शकुंतला ने सिर झुकाकर आशीर्वाद ग्रहण किया। फिर सखी प्रियंवदा से, धीरे से, कहा—स्वामी के दर्शन के लिए उत्सुक होने पर भी आश्रम को छोड़ते समय मेरे पैर, दुःख के मारे, आगे नहीं बढ़ते।

प्रियंवदा—सखी! चलते समय तपोवन के विरह से कुछ तुम्हीं कातर नहीं हो, तपोवन की भी वैसी ही दशा है। मृगों ने मुँह से तृण के कौर गिरा दिये हैं, मोरों ने नाचना बंद कर दिया है और लताओं ने पत्ते गिराकर आँसू-से बहाये हैं।

शकुंतला अब वनज्योत्स्ना लता से विदा लेने गई। इस पर उसका बहन का-सा स्नेह था। पास जाकर कहने लगी—"हे वनज्योत्स्ना! आम से लिपटी रहने पर भी तू, इधर बढ़ी हुई शाखा-रूपी भुजाओं से, मुझे गले लगा। आज मैं तुझसे दूर हो जाऊँगी।" फिर सखियों से कहा—सखियो! इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।

दोनों सखियों ने आँसू गिराते हुए कहा—और हमें किसे सौंप रही हो?

यह सुनकर महर्षि कण्व ने कहा—अनसूया! रोओ मत। शकुंतला को तुम्हीं धीरज बँधाओ।

शकुंतला—पिता जी! कुटी के समीप रहनेवाली मृगी के सकुशल प्रसव की मुझे सूचना भेजिएगा।

इस समय चलते-चलते एक मृग ने पीछे से आकर शकुंतला का आँचल खींच लिया। शकुंतला ने घूमकर देखा तो वही मृग था, जिसे उसने स्वयं खिला-पिलाकर बड़ा किया था। रोते हुए शकुंतला ने उसे लौटाया।

महर्षि कण्व ने शकुंतला से शांत हो जाने को कहा; क्योंकि रोने से आँखों में आँसू आ जाने के कारण ऊबड़खाबड़ मार्ग पर चलना कठिन था।

इतने में सब एक सरोवर के पास पहुँच गये। शार्ंगरव ने ऋषि से कहा—भगवन्! प्रिय जन को जलाशय तक ही छोड़ने जाना चाहिए। सो यह सरोवर है। अब आप हमें संदेश देकर लौट जायँ।

सब लोग बड़ के पेड़ की छाया में बैठ गये। महर्षि कण्व ने राजा दुष्यंत के लिए संदेश दिया—"हे राजन्! हम तपस्वियों को, अपने उच्च कुल को, तथा तुम्हारे लिए इसकी आत्म-प्रेरित

स्नेह-प्रवृत्ति को अच्छी तरह विचारकर तुम सब स्त्रियों में इसे समान गौरव से देखना। इससे अधिक भाग्य के अधीन है; कन्या के स्वजनों को उसे कहना उचित नहीं।"

शिष्यों से यह संदेश कहकर महर्षि ने शकुंतला से कहा—पुत्री! अब तुम्हें कुछ शिक्षा देनी है। तुम यहाँ से पतिगृह को पहुँचकर—

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो, सखीभाव सौतिन में लीजो।
भरता यदपि करे अपमाना, कुपित होई गहियो जनि माना॥
मृदु-भाषिनि दासिन सँग रहियो, बड़े भागि पै गर्व न लहियो।
या विधि तिय गेहिनि पद पावें, उलटी चलि कुल-दोष कहावें॥

गौतमी ने भी कहा—बेटी! यह कुल-वधुओं के लिए उपदेश है। इसका सदैव ध्यान रखना।

कण्व ने जब शकुंतला से कहा कि मेरे और अपनी सखियों के गले लगो, तब शकुंतला का जी भर आया। वह रोने लगी। कण्व ने उसे धीरज दिया। शकुंतला उनके चरणों पर गिर पड़ी।

कण्व ने आशीर्वाद दिया—तेरी इच्छा पूर्ण हो।

शकुंतला ने अब सखियों से गले लगने को कहा।

गले लग चुकने पर उन्होंने शकुंतला से कहा—सखि! यदि वह राजा तुम्हें पहचानने में विलंब करें तो उनके नाम की यह अँगूठी उन्हें दिखा देना।

यह सुनकर शकुंतला काँप उठी। परंतु दोनों सखियों ने कहा—डरो नहीं। अति स्नेह में दुःख की आशंका होती ही है।

अधिक विलंब हो जाने से शार्ंगरव ने कहा—अब दोपहर बीत गई है। जल्दी करो।

शकुंतला ने पिता के गले लगकर, आश्रम की ओर देखते हुए कहा—तात! मैं तपोवन को फिर कब देखूँगी?

कण्व—जब चिरकाल तक पति के साथ रहकर दुष्यंत के पुत्र का विवाह कर लेगी तब, स्वामी से राज्य और कुटुंब का भार पुत्र को मिल जाने पर, पति के साथ इस शांत आश्रम में तू फिर पैर रक्खेगी।

फिर सबने मिलकर शकुंतला को विदा किया। जब वह पेड़ों की ओट में छिप गई, तब सब लौट आये। सबके हृदय शोक में डूब रहे थे। कण्व ने "पुत्री पराया धन है" कहकर हृदय को धीरज दिया।

—※ ५ ※—

महाराज दुष्यंत अभी राज-काज से निपटकर विश्राम करने गये ही थे कि कंचुकी वातायन ने आकर निवेदन किया—महाराज की जय हो! हिमालय की तराई के वन में रहनेवाले तपस्वी लोग काश्यप का संदेश लेकर, आये हैं। उनके साथ स्त्रियाँ भी हैं।

दुष्यंत ने विस्मित होकर कहा—क्या? काश्यप का संदेश लेकर स्त्रियों सहित तपस्वी? अच्छा, तो मेरी ओर से सोमरात पुरोहित से कहो कि आश्रमवासियों का शास्त्र-विधि से सत्कार कर उन्हें स्वयं ही मेरे पास ले आवें। मैं भी इन तपस्वियों के दर्शन योग्य स्थान में प्रतीक्षा करता हूँ।

कंचुकी वातायन के चले जाने पर महाराज दुष्यंत अग्निशाला की ओर चले गये और वहाँ तुरंत की धुली हुई छत पर बैठ गये। वे सोचने लगे कि भगवान् काश्यप ने तपस्वियों को मेरे पास क्यों भेजा है?

इतने में स्त्रियों सहित कण्व के शिष्य, वहाँ आ गये। उनके आगे-आगे कंचुकी वातायन और पुरोहित सोमरात थे।

उस समय शकुंतला ने कहा—हाय ! मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कती है !

गौतमी—पुत्री ! अमंगल नष्ट हो। तेरे स्वामी के कुल-देवता तुझ पर सुख की वर्षा करें।

परंतु शकुंतला जैसे-जैसे आगे बढ़ती थी, उसका हृदय काँपता जाता था।

अभिवादन, आशीर्वाद तथा कुशल-प्रश्न के अनंतर शार्गरव ने कहा—राजन् ! महर्षि ने कुशल-प्रश्न के पश्चात् यह कहा है कि तुमने परस्पर प्रतिज्ञा कर मेरी इस कन्या से विवाह किया है। तुम दोनों के इस विवाह को मैंने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया; क्योंकि तुम प्रशंसनीय पुरुषों में प्रथम माने गये हो और शकुंतला सत्कर्म की मूर्ति है। समान गुणवाले वर और वधू को मिलाकर प्रजापति चिरकाल की निंदा से बच गया। सो अब इस गर्भवती को, अपने साथ धर्माचरण के लिए, स्वीकार करो।

फिर गौतमी ने कहा—राजन् ! मैं कुछ कहना तो चाहती हूँ, पर कहूँ क्या ? क्योंकि न तो इसने गुरुजनों की अपेक्षा की है, और न तुमने इसके बंधुओं से पूछा है।

यह सब सुनकर दुष्यंत ने कहा—यह क्या कहा जा रहा है ?

शकुंतला को ये शब्द आग-से प्रतीत हुए।

शार्गरव—हैं ! यह क्या ?

दुष्यंत—क्या मैंने इसके साथ विवाह किया था ?

यह सुनकर शकुंतला ने दुःख से मन-ही-मन कहा—हृदय ! तेरी शंका ठीक ही थी।

शार्गरव ने फिर कहा—क्या पहले किये गये कार्य के लिए खीझ होने से राजा को धर्म से विमुख होना चाहिए ?

दुष्यंत—इस असत्य कल्पना का प्रसंग कहाँ से आया ?

शार्गरव क्रोध से बोला—ऐश्वर्य से उन्मत्त पुरुषों में प्रायः ऐसे विकार भरे होते हैं।

अब गौतमी ने शकुंतला से कहा—पुत्री ! लज्जा मत कर। तेरा घूघट हटाती हूँ, जिससे तेरा पति तुझे पहचान ले।

परंतु उसका मुँह देखकर भी दुष्यंत पहचान न सके। थोड़ी देर तक देखकर कहने लगे—विचार करने पर भी मुझे स्मरण नहीं आता कि इसे मैंने कब स्वीकार किया था। अब इस गर्भवती को कैसे ग्रहण करूँ ?

शकुंतला ने दुखी होकर मन में कहा—हाय ! स्वामी को विवाह में ही संदेह है। अब मेरी बढ़ी हुई आशा कहाँ गई ?

राजा का उत्तर सुनते ही शार्गरव बोल उठा—न ग्रहण करो। बलपूर्वक स्पर्श की गई कन्या का अनुमोदन करनेवाले मुनि का तिरस्कार तुम्हें करना ही चाहिए। वह चुराई गई अपनी वस्तु चोर को दान कर रहे हैं।

शारद्वत—शार्गरव ! बस चुप रहो।—शकुंतला ! हमें जो कहना था सो कह दिया। महाराज जब ऐसा कहते हैं तब तुम्हीं इन्हें उत्तर दो।

शकुंतला ने सोचा कि पहले का अनुराग जब इस अवस्था में आ गया है तब स्मरण कराने से क्या लाभ ? अथवा मुझे तो अपनी आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न करना ही चाहिए। फिर प्रकट में कहा—हे पौरव ! पहले तपोवन में स्वभाव से सरल हृदयवाली मुझको प्रतिज्ञाओं से ठगा और अब, सब कुछ जानते हुए भी, ऐसे वचन कहकर अस्वीकार करना तुम्हारे योग्य ही है !

राजा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—हरे ! हरे ! मुझे पातकी बनाने के लिए, और अपने कुल को भी कलंकित करने

के लिए, तुम ऐसा यत्न कर रही हो, जैसे उमड़े हुए जल-प्रवाह से सिंधु नदी तट के वृक्षों को गिराती है और अपने निर्मल जल को भी गँदला करती है।

शकुंतला—अच्छा, पर-स्त्री की आशंका को तुम्हारे ही अभिज्ञान (निशानी) से हटाती हूँ।

दुष्यंत—यह अत्युत्तम है।

शकुंतला ने अँगुली देखी तो वहाँ अँगूठी का पता न था। उसने दुखी होकर गौतमी की ओर देखा।

गौतम—शक्रावतार के भीतर शची-तीर्थ के जल को प्रणाम करते समय अँगूठी गिर गई होगी।

दुष्यंत ने मुस्कराकर कहा—यह स्त्री की तुरंत सूझ कहलाती है।

अब शकुंतला समझ गई कि यह सब भाग्य का खेल है। उसने अब विविध प्रकार से तपोवन के कुछ दृश्यों की स्मृति करानी चाही। परंतु सब निष्फल था। राजा को कुछ भी स्मरण न आया।

दुष्यंत—अपना कार्य साधनेवाली ऐसी स्त्रियों के मधुर मिथ्या वचनों से विषयी लोग ही आकर्षित हो जाते हैं।

ये अपशब्द सुनकर गौतमी ने कहा—महाभाग ! ऐसा कहना तुम्हें उचित नहीं। यह तपोवन में पली हुई कन्या छल से सर्वथा अनभिज्ञ है।

दुष्यंत—वृद्धे ! मनुष्यों से भिन्न प्राणियों में भी, बिना ही शिक्षा पाये, स्त्री-जाति की चतुराई देखी जाती है। फिर बुद्धिमती स्त्रियों की क्या बात ? कोयल उड़ने योग्य न होने तक अपने बच्चों का पालन-पोषण दूसरे पक्षियों से कराती है।

अब तो शकुंतला को असीम क्रोध आ गया। वह कहने

लगी—अनार्य ! तुम अपने जैसा सबको समझते हो ! तुम धर्म का बाहरी वेष धारण करनेवाले तिनके से ढके हुए कूप की भाँति हो। भला तुम्हारा अनुकरण अब कौन करेगा ?

अब तो दुष्यंत को भी संदेह हुआ कि यह क्रोध निश्छल जान पड़ता है। परंतु वे ऐसा कह नहीं सके।

दुष्यंत—दुष्यंत का चरित्र प्रसिद्ध है। उसकी प्रजा में भी यह बात नहीं दीखती।

शकुंतला ने फिर क्रोध से कहा—पुरुवंश का विश्वास करके, मुख में मधु और हृदय में विषवाले के हाथों पड़कर, मैं यहाँ कुलटा कहलाई हूँ !

अब शकुंतला आँचल से मुँह ढककर रोने लगी। शार्ङ्गरव ने भी उसे डाटकर कहा—विना सोचे-समझे किया हुआ चपलता का काम इसी प्रकार दुखी करता है। अतः भली प्रकार परीक्षा करके ही किसी से गुप्त प्रेम करना चाहिए। मित्रता अज्ञात हृदयों में शत्रुता बन जाती है।

दुष्यंत—क्या इसका विश्वास करके ही हमें अपवाद लगाकर दुखी करते हो ?

शार्ङ्गरव—इसका उत्तर सुन लो। जन्म-काल से ही जो छल में अशिक्षित है उसका वचन तो प्रामाणिक नहीं, और जिन्होंने दूसरों को छलना विद्या की भाँति पढ़ा है, उनके वचन विश्वसनीय हैं !

शारद्वत—शार्ङ्गरव ! इन बातों से क्या लाभ ? चलो, हमने गुरु जी की आज्ञा का पालन कर दिया।

फिर राजा की ओर देखकर उसने कहा—राजन् ! यह तुम्हारी स्त्री है; चाहे इसे रक्खो, चाहे निकाल दो। पति का स्त्री पर सब प्रकार का अधिकार है।

अब गौतमी और दोनों तपस्वी, शकुंतला को वहीं छोड़कर, चले गये।

शकुंतला ने कहा—इस कपटी ने मुझे ठग लिया। क्या तुम भी मुझे छोड़े जाते हो?

शकुंतला उनके पीछे-पीछे जाने लगी। उसे देखकर गौतमी ठहर गई और शागंरव से बोली—शकुंतला तो हमारे पीछे रोती चली आती है। पति से त्यागी हुई मेरी पुत्री अब क्या करे?

शागंरव ने क्रोध से लौटकर कहा—आः, दुष्टे! स्वतंत्र हुआ चाहती है?

शकुंतला भयभीत होकर काँपने लगी।

शागंरव—यदि तू वैसी ही है जैसा यह राजा कहता है तो तुझ कुलटा से हमें क्या काम? और यदि तू अपने पातिव्रत्य को जानती है तो पति के घर में रहकर सबकी सेवा करना भी अच्छा है। तू यहीं रह, हम जाते हैं।

दुष्यंत—इसे क्यों धोखा देकर जाते हो?

शागंरव—राजन्! किसी अन्य में आसक्ति होने से यदि पिछले वृत्तांत को भूल गये हो तो, हे धर्म-भीरु! क्या अब स्त्री-त्याग का फल भोगोगे?

दुष्यंत—इसका निर्णय आप ही कर दीजिए। या तो मैं मूढ़ हूँ, अथवा यह मिथ्या कहती है। मैं इस संशय में स्त्री-त्यागी बनूँ अथवा पर-स्त्री के स्पर्श के पाप का भागी?

पुरोहित अपने आप कह उठा—बालक का जन्म होने तक यह स्त्री हमारे घर ठहरे। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि ज्योतिषियों ने पहले बताया है कि आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा। वह—मुनि का नाती—यदि इन लक्षणों से युक्त होगा तो इसे प्रसन्न करके अंतःपुर

में रख लेना, अन्यथा इसके पिता के पास पहुँचवा देना निश्चित है।

दुष्यंत ने यह सम्मति मान ली। तब पुरोहित ने शकुंतला से अपने पीछे आने को कहा। शकुंतला रोती हुई, पुरोहित और तपस्वियों के साथ, चली गई।

पुरोहित ने तुरंत ही लौटकर महाराज से कहा—राजन्! आश्चर्य है! कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर अपने भाग्य की निंदा करती हुई वह कन्या छाती पीट-पीटकर रोने लगी। इतने में स्त्री के आकार की एक ज्योति उसे उठाकर अप्सरा-तीर्थ की ओर ले गई।

यह वृत्तांत सुनकर सब विस्मित हो गये। व्याकुल हुए राजा अपने शयन-गृह को चले गये। वे सोचते थे कि यद्यपि मुझे इस लौटाई हुई मुनि-कन्या के पाणि-ग्रहण का स्मरण नहीं है, तथापि मेरा हृदय मुझे बलपूर्वक पीड़ित करता हुआ मानों उसका विश्वास दिला रहा है।

—※ ६ ※—

राजा दुष्यंत ने अपने साले को नगर-रक्षक नियुक्त किया था। एक दिन उस नगर-रक्षक ने एक धीवर को पकड़ लिया; क्योंकि वह राजा के नाम की रत्न-जड़ी अँगूठी बेच रहा था। जानुक और सूचक राजपुरुषों ने उसे पीटते हुए पूछा—अरे चोर! तूने यह अँगूठी, जिसमें मणियों से महाराज का नाम अंकित है, कहाँ पाई?

धीवर ने डरते हुए कहा—आप प्रसन्न हों! मैं ऐसा काम करनेवाला नहीं हूँ।

जानुक—तो क्या तू कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो महाराज ने तुझे यह दान में दी है?

धीवर—मैं शक्रावतार तीर्थ का रहनेवाला धीवर हूँ; मछलियाँ फँसाकर अपना कुटुंब पालता हूँ।

नगर-रक्षक ने मुस्कराकर कहा—यह उत्तम जीविका है।

धीवर—प्रभु! ऐसा न कहिए। सुना है, जातीय व्यवसाय निंदित हो तो भी उसे छोड़ना न चाहिए। दयालु श्रोत्रिय (वैदिक यज्ञ करनेवाला) भी, पशु-हिंसा के कारण, भयानक ही कहलाता है।

नगर-रक्षक—अच्छा, तब क्या हुआ?

धीवर—एक दिन एक रोहू मछली को काटने पर मुझे उसके पेट में जगमगाते रत्नवाली यह अँगूठी मिली। इसके बाद मैं इसे बेचने को दिखा ही रहा था कि आपने मुझे पकड़ लिया।

नगर-रक्षक उस धीवर को राज-भवन में पकड़ लाया। उसने सब वृत्तांत कहकर इस विषय में राजा से आज्ञा चाही। परंतु राजा के पास से लौटने पर और ही बात हो गई। नगर-रक्षक ने धीवर को छोड़ दिया। उसका अँगूठी पाना सर्वथा ठीक था। उसे अँगूठी का पूरा मोल तो मिला ही, ऊपर से पुरस्कार भी मिला।

इतना धन देखकर राजपुरुष सूचक ने कहा—फाँसी से उतारकर हाथी पर चढ़ाया गया है।

जानुक—वह अँगूठी अवश्य अधिक मोल की होगी।

नगर-रक्षक—राजा ने मूल्य के कारण उस अँगूठी का अधिक मान नहीं किया। उसके देखने से उन्हें किसी प्रिय-जन का स्मरण आ गया, जिससे सहज गंभीर होने पर भी क्षण भर उनकी आँखें डबडबाने लगीं।

राजपुरुष उस धीवर के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे। धीवर ने अपनी इच्छा से आधा धन नगर-रक्षक को दे दिया। इससे

नगर-रक्षक उस पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे साथ लेकर वह मनोविनोद के लिए मध्य-पान के लिए कहीं चला गया।

कुछ समय के बाद सानुमती नाम की अप्सरा आकाशमार्ग से विमान में वहाँ आई। वह अप्सरा-तीर्थ के पास, सिद्ध पुरुषों के स्नान के समय तक, अपनी पारी से निपट चुकी थी और अब राजर्षि दुष्यंत की दशा देखने आई थी। मेनका के संबंध से शकुंतला उसकी आत्मीय हो गई थी। राज-भवन में वसंतोत्सव के समय भी उत्सव का आरंभ न देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह तिरस्करिणी विद्या द्वारा छिपकर इधर-उधर से इसके कारण का पता लगाने लगी। अंत में उसे विदित हो गया कि अँगूठी को देखकर, राजा को शकुंतला की स्मृति आ गई है। इसी से प्रबल उद्वेग के कारण उन्मत्त हुए राजा ने वसंतोत्सव रुकवा दिया है।

सानुमती ने जब राजा को माढव्य (विदूषक) और वेत्रवती (दासी) के साथ उद्यान में आते देखा तब वह अदृश्य ही रहकर उनका वार्त्तालाप सुनने लगी।

दुष्यंत चिंताग्रस्त होकर धीरे-धीरे चलते हुए कह रहे थे—यह पापी हृदय पहले मृग-नयनी शकुंतला के स्मरण कराने पर भी सोता रहा। अब पश्चात्ताप का दुख सहने को जागा है।

यह सुनकर सानुमती ने कहा—ओह ! तपस्विनी शकुंतला भाग्यशालिनी है।

राजा को चिंतित देख माढव्य ने सोचा, शकुंतला-रूपी व्याधि से ग्रस्त हुए राजा की न जाने कैसे चिकित्सा होगी।

राजा ने इस समय दासी के द्वारा मंत्री पिशुन को कहला भेजा—विलंब से उठने के कारण मैं आज धर्मासन पर बैठने में असमर्थ हूँ। आपने नगर का जो कार्य देखा हो, वह पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दीजिए।

दासी चली गई। अब एकांत हो गया। राजा ने पूछा--मित्र! अब मैं कहाँ बैठकर मन बहलाऊँ? माढव्य ने स्मरण कराया—राजन्! आपने विश्वसनीय चतुरिका दासी को आज्ञा दी है कि "मैं इस समय माधवी-मंडप में रहूँगा। तुम मेरे हाथ से अंकित शकुंतला का चित्र ले आओ।"

दुष्यंत को भी स्मरण आ गया। दोनों लता-कुंज में चले गये और वहाँ मणिशिला पर बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। चित्र देखने की अभिलाषा से सानुमती भी अदृश्य रूप से पास ही बैठ गई।

दुष्यंत ने गहरी साँस लेकर कहा—मित्र! मुझे शकुंतला का पहले का वृत्तांत सब स्मरण आ गया। मैंने तुमसे कहा था; पर अस्वीकार करने के समय तुम मेरे पास नहीं थे। किंतु तुमने पहले भी कभी उसका नाम नहीं लिया। क्या मेरी भाँति तुम भी उसे भूल गये थे?

माढव्य—मैं भूला नहीं थी। किंतु सब बातें कहकर अंत में आपने यह भी तो कहा था कि "यह हँसी की बात है, इसे सच न मान लेना।" मुझ मूर्ख ने भी आपकी बात को सच समझ लिया। होनी ही ऐसी थी।

अस्वीकार करने से व्याकुल हुई शकुंतला की अवस्था का स्मरण कर दुष्यंत बहुत ही दुखी हुए। वे कहने लगे—मित्र! मैं निरुपाय हो गया हूँ।

सानुमती ने मन-ही-मन कहा—ओह! अपने कार्य में इतनी तत्परता! राजा के संताप से मुझे प्रसन्नता हो रही है।

माढव्य—मैं समझता हूँ, उसे कोई देवता उठा ले गया।

दुष्यंत—मित्र! उस पतिव्रता को छूने का साहस कौन करेगा? मैंने सुना है कि उसकी माता मेनका है। सो उसे मेनका की सखियाँ ही ले गई होंगी।

माढव्य—ऐसा है तो धीरज रक्खो। समय आने पर उससे मिलन होगा; क्योंकि पति के वियोग से दुखी पुत्री का दुःख माता-पिता चिरकाल तक नहीं देख सकते।

किंतु राजा को किसी प्रकार धीरज न होता था। कभी वे अपनी उस अँगूठी को धिकारते थे, कभी अपने ही को।

इसी समय शकुंतला का हस्तलिखित चित्र लेकर चतुरिका आ गई। चित्र बहुत बढ़िया बना था। उस चित्रपट में पीछे और दृश्य बनाने के अभिप्राय से राजा ने चतुरिका को रंग का डिब्बा और कूची लाने को भेजा था।

चित्रांकित शकुंतला को देखकर राजा पागल-से हो गये। उन्हें शकुंतला सहित सब दृश्य प्रत्यक्ष-से दिखाई देने लगे। प्रत्येक दृश्य का ध्यान करके चित्र में उसकी पूर्ति का विचार करते हुए वे उस चित्र के द्वारा सजीव शकुंतला के दर्शन का अनुभव करने लगे। माढव्य ने जब स्मरण कराया कि यह तो चित्र ही है, तब उन्हें भारी शोक हुआ। उनके नेत्र सजल हो गये। वे कहने लगे—मुझे तन्मय हृदय होने के कारण उसमें शकुंतला के साक्षात् दर्शन का-सा सुख मिल रहा था; सो चित्र का स्मरण कराकर तुमने मेरी शकुंतला को फिर चित्र में बदल दिया।

यह सुनकर सानुमती ने कहा कि भूत और वर्तमान का विरोधी यह विरह-मार्ग अपूर्व है।

माढव्य—राजन्! आपने यह अँगूठी उसके हाथ में किस लिए दी थी।

दुष्यंत—जब मैं आश्रम से अपने नगर के लिए चलने को था, तब आँखों में आँसू भरकर शकुंतला ने कहा—आप मुझे कितने समय में सूचना भेजेंगे? मैंने तब यह अँगूठी उसे पहना

कर उत्तर दिया कि प्रतिदिन इस अँगूठी पर मेरे नाम का एक अक्षर गिन लिया करना, और अभी नाम के अंतिम अक्षर तक तुम पहुँची न होगी कि मेरा दूत तुम्हें रनवास में लिवा लाने के लिए आ जायगा। पर ऐसा करना मैं मोह-वश भूल गया।

सानुमती—बड़ा बढ़िया प्रबंध भाग्य ने बिगाड़ दिया।

राजा—मित्र! मैं इस दुःख को निरंतर कैसे सहन करूँ? मुझे नींद नहीं आती, अतः जागते रहने से सपने में उसका मिलना दुर्लभ है और आँसू उसे चित्र में भी नहीं देखने देते!

राजा के इन भावों से प्रसन्न होकर सानुमती कहने लगी—तुम्हारे द्वारा अस्वीकार किये जाने का जो दुःख शकुंतला को हुआ है, उसे तुमने सर्वथा मिटा दिया।

इतने में चतुरिका ने आकर राजा से कहा कि रानी वसुमती ने मुझसे रंग का डिब्बा और कूची छीन ली है और इधर ही आ रही हैं।

राजा ने माढव्य से कहा—शकुंतला का चित्र छिपा दो।

चित्र लेकर माढव्य 'मेघप्रतिच्छंद' भवन में भाग गया। अब वेत्रवती दासी आ पहुँची। उसके द्वारा दुष्यंत को विदित हुआ कि रानी, उसे राजकाज के पत्र लेकर आते देखकर राह से ही लौट गई हैं।

यह पत्र मंत्री पिशुन ने राजा के पास भेजा था। पत्र में लिखा था कि समुद्र के व्यापारी सेठ धनमित्र की, जहाज के डूब जाने से, मृत्यु हो गई है। वह निःसंतान था। इसलिए उसका धन राजा को मिलना चाहिए।

यह पढ़कर राजा को अपने निःसंतान होने पर दुःख हुआ। उन्होंने दासी से कहा—यदि वह धनी है तो उसके अनेक पत्नियाँ होंगी। पता लगाओ, उसकी कोई स्त्री गर्भवती तो नहीं है।

दासी—महाराज ! सुना है, अयोध्या के सेठ की पुत्री का, जो धनमित्र की स्त्री है, अभी पुंसवन-संस्कार हुआ है।

राजा—जाओ, मंत्री से कह दो कि वह गर्भ-स्थित बालक पितृ-धन का अधिकारी है।

वेत्रवती चली गई। राजा को अब अपने निःसंतान होने का दुःख और भी पीड़ित करने लगा। उन्होंने सोचा, मेरी मृत्यु होने पर भी यही दशा पुरु-वंश की भी होगी। हाय ! मैंने धर्म-पत्नी शकुंतला को गर्भिणी अवस्था में अकारण त्याग दिया।

सानुमती ने कहा कि वह शीघ्र ही मिल जायगी।

चतुरिका ने, राजा के मनोविनोद के लिए, माढव्य को मेघ-प्रतिच्छंद प्रासाद से बुलाने के लिए वेत्रवती को भेजा।

दुष्यंत फिर यों विलाप करने लगे—आह ! मेरे पितर संशय में पड़े हुए हैं। वे कहते होंगे कि हाय ! इसके बाद हमें विधि-पूर्वक पिंड कौन देगा ? मुझ निःसंतान के दिये हुए, आँसुओं के धोने से बच रहे, जल को वे पीते होंगे।

अब तो सानुमती का हृदय पिघल गया। वह कहने लगी—हाय ! दीपक के होने पर भी इसे अंधकार देख पड़ रहा है। मैं तो इसे अभी शांत कर देती; परंतु मैंने देखा है कि इंद्र की माताजी यह कहकर शकुंतला को ढाढ़स बँधा रही थीं कि यज्ञ-भाग के उत्सुक देवता ही ऐसा करेंगे कि तेरा स्वामी शीघ्र तुझे स्वीकार कर ले। तुझे उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। अब यहाँ का वृत्तांत सुनाकर मैं प्रिय सखी को धीरज दूँगी।

फिर सानुमती वहाँ से चली गई।

इसी समय, डरी हुई वेत्रवती ने आकर कहा—महाराज ! मित्र को संकट से बचाइए।

दुष्यंत ने घबराकर पूछा—क्या हुआ ?

वेत्रवती--किसी अदृष्ट जीव ने उसे 'मेघप्रतिच्छंद' नाम के भवन की अट्टालिका पर चढ़ा दिया है।

राजा शीघ्र ही वहाँ चले गये। माढव्य का विलाप सुनकर उससे कहने लगे--डरो मत, डरो मत।

माढव्य—कोई पीछे से गर्दन पकड़कर, ईख के समान, मेरे तीन टुकड़े किए देता है।

राजा ने धनुष मँगवा लिया। उस जीव ने भी राजा को उत्तेजित करने के लिए कहा—ले, अब दुखियों के भय को हटाने वाला धनुर्धर राजा दुष्यंत तुझे बचाये।

यह सुनकर राजा को क्रोध चढ़ आया। वे कहने लगे--यह तो मुझे ही ताना मारता है।--ठहर ठहर, दुष्ट राक्षस! तू अब जीता नहीं बचेगा।

राजा ने धनुष चढ़ा लिया; परंतु उन्हें कोई भी दिखाई न देता था। इस समय वह व्यक्ति (जो वास्तव में इंद्र का सारथि) मातलि था, प्रकट हो गया। उसने कहा, इंद्र राक्षसों पर आक्रमण करना चाहते हैं और उनका नाश करने के लिए आपसे सहायता माँगी है!

मातलि को देखकर राजा ने धनुष उतार लिया और कहा—अरे, मातलि! तुम हो!

मातलि ने अपना काम कह सुनाया। उसने कहा—चिरंजीव! इंद्र का संदेश सुनिए। कालनेमि की संतान दानवों का समूह दुर्जय है। उन दानवों को आपके मित्र इंद्र नहीं जीत सकते। रणभूमि में आप उनका नाश करें।

राजा ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। फिर मातलि से पूछा—तो माढव्य को तुमने क्यों सताया?

मातलि ने मुस्कराकर कहा—वह भी बताता हूँ। किसी

कारण-वश आप मुझे मन के संताप से व्याकुल दिखाई पड़े। अतः आपको उत्तेजित करने के लिए मैंने वैसा किया था।

राजा मातलि के साथ जाने लगे। वे माढव्य द्वारा मंत्री पिशुन को, प्रजा-पालन में सावधानी वरतने के लिए, आज्ञा देकर चले गये।

—※ ७ ※—

जब महाराज दुष्यंत इंद्र के कार्य से निपट गये तब इंद्र ने उनका विशेष सत्कार किया। सब देवताओं के सामने उन्हें अपने आधे सिंहासन पर विठाया। इंद्र से मंदार-पुष्पों की माला पाने की आशा किये उनका पुत्र जयंत खड़ा था। परंतु इंद्र ने माला उसे न देकर दुष्यंत को पहना दी। इस प्रकार विशेष सम्मान पाकर दुष्यंत, मातलि के साथ, विमान से भूलोक को चले।

मार्ग में स्वर्ग के अति रमणीय दृश्य देख पड़े। स्वर्ग को जाते हुए राजा ने पहले दिन असुरों के संहार की उत्सुकता के मारे यह प्रदेश नहीं देखा था। आज उन्होंने मातलि से पूछा—हम वायु के कौनसे मार्ग में हैं ?

मातलि—हरि (वामन) के दूसरे पग से पवित्र हुआ यह 'प्रवह' वायु का मार्ग है। इसमें रजस् नहीं हैं। यह आकाश-गंगा को बहाता है और किरणों को बाँटता हुआ नक्षत्रों को चलाता है।

यह दृश्य देखकर बाहरी और भीतरी इंद्रियों-सहित दुष्यंत का अंतरात्मा पुलकित हो गया। राजा ने रथ के चक्र को देख-कर कहा—हम मेघों के मार्ग में उतर आये हैं। चक्र के अरों में से निकलते हुए चातक और क्षणस्थायी विद्युत् के प्रकाश से लिप्त घोड़ों तथा जल-विंदुओं से गीले पहियों वाला यह आपका रथ जल-भरे बादलों के ऊपर चलने की सूचना देता है।

मातलि—ठीक है, आप शीघ्र ही अपने राज्य की भूमि में पहुँच जायँगे।

राजा ने नीचे की ओर देखकर फिर कहा—मातलि! वेग से नीचे उतरने के कारण मनुष्य-लोक आश्चर्यमय दिखाई देता है। ऊँचे उठे हुए पर्वतों के शिखरों के कारण पृथ्वी नीचे उतरती हुई-सी दिखाई देती है। शाखाओं के स्पष्ट होने से ये पेड़ पत्तों में छिपे हुए अपने रूप को बदल रहे हैं। क्षीण दिखने से अदृश्य जलवाली नदियाँ विस्तार से प्रकट हो रही हैं। देखो, भुवन किसी के द्वारा ऊपर फेंका हुआ-सा मेरे पास आ रहा है।

इस दृश्य की प्रशंसा मातलि ने भी की। राजा ने पूछा—पूर्व पश्चिम समुद्र में डूबा हुआ, सोने का रस-सा बहाने वाला, संध्या की मेघ-राशि के समान यह कौन सा पर्वत है?

मातलि—यह किंपुरुषों का (निवास-स्थल) हेमकूट नाम का पर्वत है। यह तपस्वियों का परम क्षेत्र है। देखिए! ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से उत्पन्न सुरासुरों के गुरु, प्रजापति कश्यप अपनी पत्नी के साथ यहाँ तपस्या करते हैं।

यह सुनकर दुष्यंत ने भगवान् कश्यप को प्रणाम करने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की।

मातलि ने रथ रोक लिया। दोनों रथ से उतर पड़े। ऋषियों के तपोवन को देख राजा अति विस्मित होकर कहने लगे कि अन्य मुनि तपस्या द्वारा जिसकी इच्छा करते हैं, वही यह स्थान है। इसमें कल्प-वृक्षों से भरे वन में वायु के द्वारा प्राणों की उचित वृत्ति हो जाती है। यहाँ स्वर्ण-कमल के परागों से लाल हो रहे जल में स्नान सुलभ है और रत्न-शिलावाले घरों में ध्यान तथा अप्सराओं के पास संयम किया जाता है। इस प्रकार ऐसे स्थान में रहकर भी ये तपस्या करते हैं।

मातलि अब राजा को अशोक वृक्ष के नीचे ठहराकर इंद्र के गुरु कश्यप मुनि को सूचना देने चला गया।

इस समय दुष्यंत की दाहिनी भुजा फड़कने लगी। राजा ने कहा—मैं मनोरथ पूर्ण होने की आशा नहीं करता। भुजा! तू व्यर्थ फड़कती है। जिस सुख का पहले तिरस्कार होता है वह फिर दुःख में बदल जाता है।

इतने में राजा को एक ओर से किसी का यह कथन सुनाई दिया—चपलता मत कर। तू अपनी प्रकृति को कैसे पा गया?

राजा ने कहा—यह तो चपलता का स्थान नहीं है। यह कौन मना कर रहा है?

जिधर से शब्द आया था उधर देखने पर दो तपस्विनियों के साथ, एक पराक्रमी बालक दिखाई पड़ा। सिंह का बच्चा आधा ही दूध पी पाया था कि उसे वह बालक खेलने के लिए खींच रहा था। वह सिंह-शिशु से कह रहा था—मुँह खोल; मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

एक तपस्विनी ने डाँटते हुए कहा—ढीठ! हमारे संतान-तुल्य जीवों को क्यों पीड़ा देता है? तेरा क्रोध बढ़ता जाता है। ऋषियों ने ठीक ही तेरा नाम सर्वदमन रक्खा है।

बालक को देखकर राजा को उस पर औरस पुत्र का-सा स्नेह हो आया। उन्होंने सोचा, निःसंतान होने के कारण इस पर मेरा प्रेम हो रहा है।

इस समय दूसरी तपस्विनी ने बालक से कहा—जो तू इस सिंह के बच्चे को नहीं छोड़ेगा तो यह सिंहिनी तुझ पर झपटेगी।

बालक ने मुस्कराकर—"ओह, मैं तो बहुत डर गया!" ऐसा कहा और सिंहिनी के बच्चे का नीचे का होंठ खींच लिया।

राजा को विस्मय हुआ। उन्हें यह बालक बड़ा तेजस्वी जान पड़ा।

एक तपस्विनी—वत्स! उसे छोड़ दे, तुझे दूसरा खिलौना दूँगी।

"कहाँ है? दो।" कहकर बालक ने हाथ फैला दिया।

दूसरी तपस्विनी—सुव्रता! यह निरी बातों से न मानेगा। जाओ, मेरी कुटिया में ऋषि-कुमार मार्कंडेय का विचित्र रंगोंवाला मिट्टी का मोर रक्खा है! उसे ले आओ।

"तब तक मैं इसी से खेलूँगा।" कहकर बालक तपस्विनी को देखकर हँसा।

तपस्विन ने अँगुली से निर्देश करके कहा—"अरे, यह मेरा कहा नहीं मानता! यहाँ कोई ऋषि-कुमार है?" फिर राजा को देखकर कहा—"भद्र! आओ, इस सिंह के बच्चे को, जो इस बालक की क्रीड़ा से पीड़ित हो रहा है, छुड़ा दो।"

राजा ने पास जाकर मुस्कराते हुए कहा—अरे महर्षि-कुमार! इस प्रकार आश्रम के विरुद्ध अपनी वृत्ति से तुमने, जीवों के आश्रय-दाता संयमी पिता को वैसे ही दूषित किया है, जैसे चंदन-वृक्ष को काले साँप के बच्चे दूषित करते हैं।

तपस्विनी—भद्र! यह ऋषि-कुमार नहीं है।

दुष्यंत—यह तो इसकी आकृति और चेष्टा ही कहती है। मैंने केवल स्थान के कारण ऐसा सोचा था।

राजा ने अब बालक का हाथ पकड़ लिया। उसके स्पर्श से उनके अंग में सुख का संचार हुआ। वे सोचने लगे—यदि किसी और वंश के पुत्र को छूने से शरीर को ऐसा सुख मिल सकता है, तो यह अपने पिता के हृदय को भला कितना आनंद देगा?

तपस्विनी—आश्चर्य है ! इस बालक का तुमसे संबंध न होने पर भी तुम दोनों का आकार इतना मिलता है कि देखकर मैं विस्मित हूँ। एक बात और भी है; यह चंचल होने पर भी तुम्हारे अनुगत हो गया है; यद्यपि तुम अपरिचित हो।

राजा—आर्ये ! यदि यह ऋषि-कुमार नहीं है तो किस कुल का है ?

तपस्विनी—पुरु-वंश का।

राजा ने मन में कहा—मेरा और इसका एक ही कुल कैसे हुआ ! कदाचित् इसी कारण यह तपस्विनी कहती है कि इसकी आकृति मुझसे मिलती है। प्रकट बोले—इस आश्रम में तो पुरुवंश के नरेश बुढ़ापे में आकर रहते हैं। इसके सिवा फिर मनुष्यों की यहाँ तक पहुँच भी तो नहीं हो सकती।

तपस्विनी—आपका कहना ठीक है। अप्सरा के संबंध से इस बालक की माता ने यहीं, देव-गुरु के तपोवन में, इसे उत्पन्न किया था।

यह सुनकर राजा ने सोचा कि यह आशा के लिए दूसरा कारण है। राजा ने तपस्विनी से पूछा—वह स्त्री किस राजर्षि की धर्मपत्नी है ?

तपस्विनी—धर्मपत्नी का परित्याग करने वाले उस मनुष्य का नाम कौन लेगा ?

दुष्यंत ने सोचा कि यह कथा तो मुझ पर ही घटती है। राजा ने सोचा, इस बालक की माता का नाम पूछूँ; परंतु पर-स्त्री के विषय में पूछना अनुचित समझकर वे चुप हो रहे।

इतने में पहली तपस्विनी सुव्रता मिट्टी का मोर लेकर आ गई। उसने कहा—सर्वदमन ! यह शकुंत-लावण्य (पक्षी की शोभा) देखो।

'शकुंत-लावण्य' में शकुंतला शब्द सुनकर बालक ने पूछा—कहाँ है मेरी माता ?

दोनों तपस्विनियाँ हँस पड़ीं और बोलीं—यह नाम की सदृशता से धोखा खा गया।

दूसरी तपस्विनी—वत्स ! तुम्हें तो यह कहा गया है कि इस मिट्टी के मोर की शोभा को देखो।

राजा ने सोचा, क्या इसकी माता का नाम शकुंतला है ? अथवा नामों की सदृशता भी संभव है। क्या यह नाम-मात्र, मृग-तृष्णा के समान मेरे दुःख के लिए लिया गया है ?

बालक—माता ! यह मोर मुझे अच्छा लगा है। (यह कह-कर मोर को पकड़ लेता है।)

इतने में सुव्रता ने उसका हाथ देखकर घबराकर कहा—अरे, इसका रक्षा-कवच हाथ में नहीं देख पड़ता !

राजा ने कहा—घबड़ाओ नहीं। इसका कवच सिंह के बच्चे के संघर्ष के समय गिर पड़ा है।

ऐसे कहकर रक्षा-कवच को पास पड़ा देखकर उसे उठाने लगे। दोनों तपस्विनियों ने उन्हें रोका, परंतु उन्होंने उसे उठा ही लिया। इससे दोनों तपस्विनियों को बड़ा विस्मय हुआ।

राजा—आपने मुझे क्यों रोका ?

सुव्रता—महाराज ! यह महान् प्रभाववाली अपराजिता नाम की दिव्य महौषधि है। इस बालक के जातकर्म के समय, भगवान् कश्यप ने यह ओषधि इस बालक के हाथ में बाँध दी थी। यह ओषधि यदि भूमि पर गिर जाय तो इस बालक के माता-पिता के सिवा और कोई इसे नहीं उठा सकता। यदि कोई उठा ले तो उसे यह साँप बनकर डस लेगी।

राजा—तुमने पहले कभी ऐसा होते देखा है ?

दोनों तपस्विनियाँ—अनेक बार।

अब तो राजा ने मनोरथ पूरा हुआ समझकर बालक को हृदय से लगा लिया।

वियोगिनी शकुंतला को यह वृत्तांत सुनाने के लिए दोनों तपस्विनियाँ चली गईं।

बालक ने दुष्यंत से कहा—मुझे छोड़ दो! मैं माता के पास जाऊँगा।

दुष्यंत—पुत्र! मेरे ही साथ चलकर माता को आनंद देना।

बालक—मेरे पिता दुष्यंत हैं, तुम नहीं।

इस विवाद से भी राजा को निश्चय हो गया।

इतने में वहाँ, एक वेणी धारण किये हुए, शकुंतला आ गई। नियम-व्रत आदि करते-करते वह दुबली हो रही थी! उसके वस्त्र मैले थे। राजा ने उसे पहचान लिया। शकुंतला ने राजा को पश्चात्ताप से विवर्ण हुआ देखकर सोचा कि यह व्यक्ति तो मेरे स्वामी-सा नहीं है। तो फिर यह है कौन जो अब रक्षा-कवच से रक्षित मेरे पुत्र को अपने स्पर्श से दूषित कर रहा है!

बालक माता को देखकर उसके पास चला गया और बोला—यह कौन है जो मुझे पुत्र कहकर स्नेह से मेरा आलिंगन करता है?

राजा ने शकुंतला से कहा—प्रिये! मैंने तुम्हारे साथ कठोरता की थी, परंतु उसका भी परिणाम अच्छा ही निकला। अब मुझे पहचान लो। पूर्व-वृत्तांत से मेरा मोह-रूपी अंधकार दूर हो गया है। सौभाग्य से तुम मेरे सामने खड़ी हो। ग्रहण के अंत में चंद्रमा का रोहिणी के साथ संयोग हुआ है।

शकुंतला ने स्वामी को प्रणाम किया; किंतु आँसुओं से गला रुक जाने के कारण कुछ और कह न सकी।

बालक—माता! यह कौन है?

शकुंतला—वत्स ! अपने भाग्य से पूछ ।

"शकुंतला ! हृदय से वह अस्वीकृति का दुःख हटा दो। उस समय मेरे मन को प्रबल मोह ने ढक लिया था। अंधा सिर पर डाली गई माला को भी साँप समझकर फेंक देता है।" ऐसा कहकर राजा दुष्यंत शकुंतला के पैरों पर गिर पड़े।

शकंतला ने उन्हें उठाते हुए कहा--नाथ ! अवश्य ही मेरे पूर्व जन्म के पुण्यों के प्रतिकूल फल उन दिनों फलनेवाले हो रहे होंगे, इसी कारण दयालु स्वामी ने मेरे साथ वैसा वर्ताव किया था। अच्छा, यह तो बताइए कि मुझ दुखिया का स्मरण आपको कैसे आया ?

राजा ने शकुंतला के आँसू पोंछकर कहा—इस अँगूठी के मिलने पर स्मरण आ गया।

शकुंतला—इस अँगूठी ने बुरा किया जो तब आपको विश्वास दिलाने के समय मुझे नहीं मिली।

राजा—तो लता, वसंत ऋतु के चिह्न सदृश इस फूल को धारण करे।

शकुंतला—मुझे इस पर विश्वास नहीं रहा। महाराज ही इसे पहन लें।

इतने में मातलि ने वहाँ आकर कहा—सौभाग्य से आप आज धर्म-पत्नी और पुत्र-मुख के दर्शन से भाग्यशाली हुए हैं। चलिए, भगवान् कश्यप आपको बुलाते हैं।

अब ये लोग भगवान् कश्यप के स्थान को गये। अदिति और भगवान् कश्यप दोनों एक आसन पर विराजमान थे। राजा ने श्रद्धा-भक्ति से उन्हें प्रणाम किया। भगवान् कश्यप ने उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर पुत्र सहित शकुंतला ने चरण-वंदना की। उन्हें आशीर्वाद देकर भगवान कश्यप ने, एक-एक की ओर

संकेत करके, कहा—सौभाग्य से साध्वी शकुंतला में, इस सुपुत्र में और आपमें क्रमशः श्रद्धा, वित्त और विधि के 'त्रिवर्ग' का संयोग हुआ है।

राजा ने अब भगवान् कश्यप से शकुंतला की स्मृति न आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—अप्सरा-तीर्थ के कार्य से निपटकर मेनका जिस समय व्याकुल शकुंतला को लेकर दाक्षायणी के पास आई थी, उसी समय मैंने ध्यान से जान लिया था कि दुर्वासा के शाप से तुमने अपनी सहधर्मिणी को ग्रहण करना अस्वीकृत कर दिया है। और कोई कारण न था। उस शाप की अवधि अँगूठी के दर्शन तक थी।

राजा—संतोष है कि मैं अपवाद से बच गया।

शकुंतला ने मन-ही-मन कहा कि सौभाग्य से मुझे स्वामी ने अकारण नहीं त्यागा था। मुझे शाप का स्मरण नहीं है। अथवा उस समय मेरा हृदय बेसुध था, इसलिए मैंने वह शाप सुना ही न होगा; क्योंकि सखियों ने नम्रता-पूर्वक मुझसे कहा था कि वह राजा जब तुम्हें स्मरण न करे तब यह अँगूठी दिखा देना।

भगवान् कश्यप ने अब शकुंतला से कहा—बेटी! तेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब अपने स्वामी पर क्रोध न करना। शाप से स्मृति नष्ट हो जाने के कारण ही तू अस्वीकृत की गई थी।

भगवान् कश्यप ने अब बालक के विषय में कहा—यह चक्रवर्त्ती और सातों द्वीपों का विजेता होगा। यहाँ पर जीवों का बलपूर्वक दमन करने से यह सर्वदमन कहलाया है। आगे लोक का भरण करने से इसका नाम भरत होगा।

राजा—जिस बालक के संस्कार आपने किये हैं उससे हम सब आशाएँ कर सकते हैं।

अब अदिति ने हर्ष प्रकट करते हुए कश्यप मुनि से कहा—

भगवन्! महर्षि कण्व के पास पुत्री के मनोरथ की पूर्ति की सूचना भेजनी चाहिए।

शकुंतला ने मन-ही-मन कहा—भगवती ने तो मेरे मन की कही है।

कश्यप—तप के प्रभाव से उन्हें सब प्रत्यक्ष है। फिर भी प्रिय सूचना अवश्य हमें भेज देनी चाहिए।

इतना कहकर उन्होंने शिष्य गालव को महर्षि कण्व के आश्रम में सूचना देने के लिए भेज दिया।

दुष्यंत, शकुंतला और कुमार भी महर्षि से विदा होकर, रथ पर चढ़कर, अपनी राजधानी को चल पड़े।